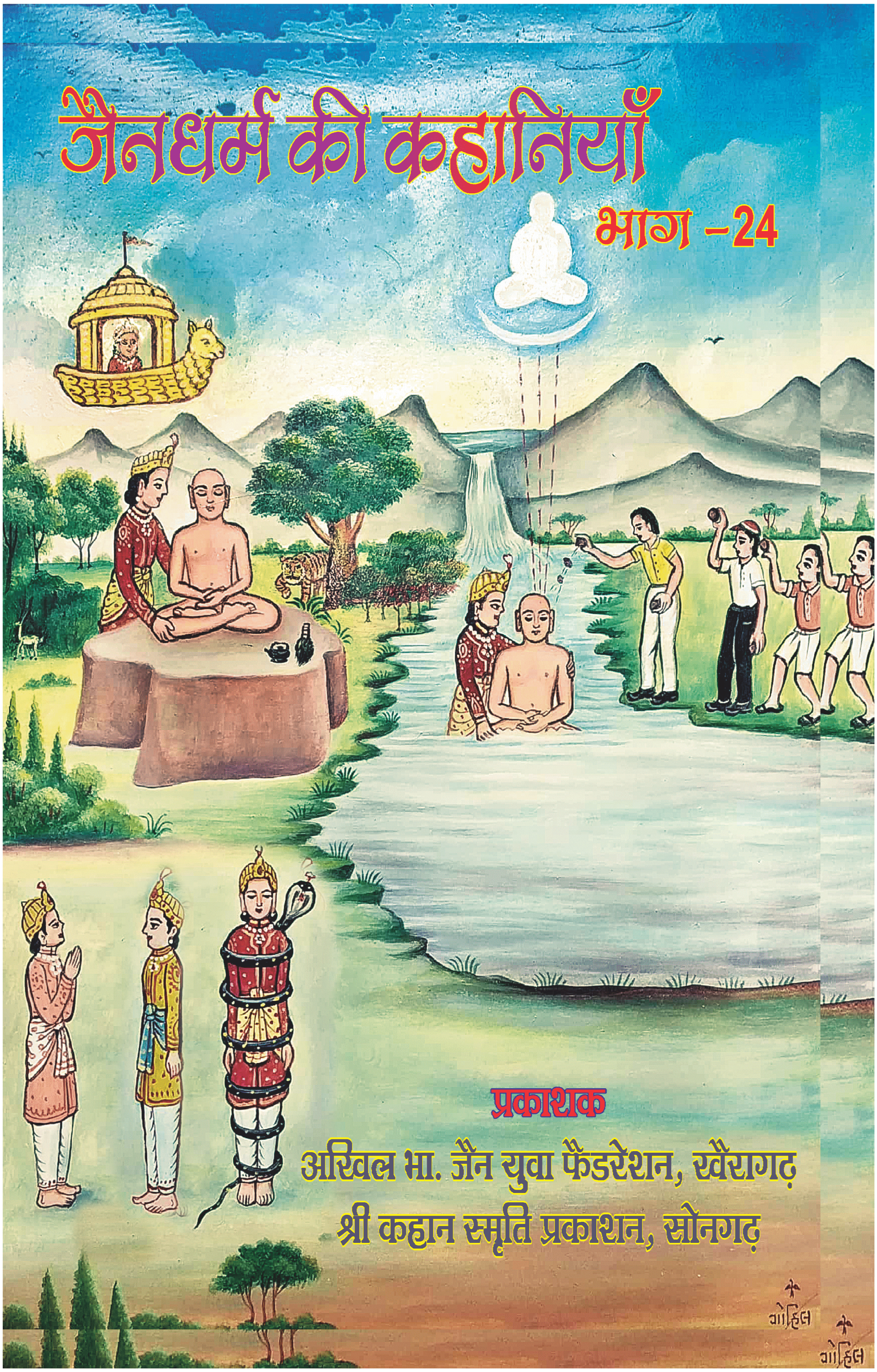

जैनधर्म की कहानियाँ

भाग – 24

प्रकाशक

अखिल भा. जैन युवा फैडरेशन, खैरागढ़

श्री कहान स्मृति प्रकाशन, सोनगढ़

हमारे प्रेरणा स्रोत : ब्र. हरिलाल अमृतलाल मेहता

जन्म
वीर संवत् २४५१
पौष सुदी पूनम
जैतपुर (मोरबी)

देहविलय
८ दिसम्बर, १९८७
पौष वदी३, सोनगढ़

सत्समागम
वीर संवत् २४७१
(पूज्य गुरुदेव श्री से)
राजकोट

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा
वीर संवत् २४७३
फागण सुदी १
(उम्र २३ वर्ष)

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के अंतेवासी शिष्य, शूरवीर साधक, सिद्धहस्त, आध्यात्मिक, साहित्यकार **ब्रह्मचारी हरिलाल जैन** की १९ वर्ष में ही उत्कृष्ट लेखन प्रतिभा को देखकर वे सोनगढ़ से निकलने वाले आध्यात्मिक मासिक **आत्मधर्म** (गुजराती व हिन्दी) के सम्पादक बना दिये गये, जिसे उन्होंने ३२ वर्ष तक अविरत संभाला। पूज्य स्वामीजी स्वयं अनेक बार उनकी प्रशंसा मुक्त कण्ठ से इस प्रकार करते थे-

"मैं जो भाव कहता हूँ, उसे बराबर ग्रहण करके लिखते हैं, हिन्दुस्तान में दीपक लेकर ढूँढने जावें तो भी ऐसा लिखने वाला नहीं मिलेगा... ।"

आपने अपने जीवन में करीब १५० पुस्तकों का लेखन/सम्पादन किया है। आपने बच्चों के लिए **जैन बालपोथी** के जो दो भाग लिखे हैं, वे लाखों की संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं। अपने समग्र जीवन की अनुपम कृति **चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों का महापुराण**-इसे आपने ८० पुराणों एवं ६० ग्रन्थों का आधार लेकर बनाया है। आपकी रचनाओं में प्रमुखत: आत्म-प्रसिद्धि, भगवती आराधना, आत्म वैभव, नय प्रज्ञापन, वीतराग-विज्ञान (छहढ़ाला प्रवचन, भाग १ से ६), सम्यग्दर्शन (भाग १ से ८), अध्यात्म-संदेश, भक्तामर स्तोत्र प्रवचन, अनुभव-प्रकाश प्रवचन, ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव, श्रावकधर्मप्रकाश, मुक्ति का मार्ग, मूल में भूल, अकलंक-निकलंक (नाटक), मंगल तीर्थयात्रा, भगवान ऋषभदेव, भगवान पार्श्वनाथ, भगवान हनुमान, दर्शनकथा, महासती अंजना आदि हैं।

२५००वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर किये कार्यों के उपलक्ष्य में, जैन बालपोथी एवं आत्मधर्म सम्पादन इत्यादि कार्यों पर अनके बार आपको स्वर्ण-चन्द्रिकाओं द्वारा सम्मानित किया गया है।

मुद्रण व्यवस्था : जैन कम्प्यूटर्स, जयपुर मो. 09414717816

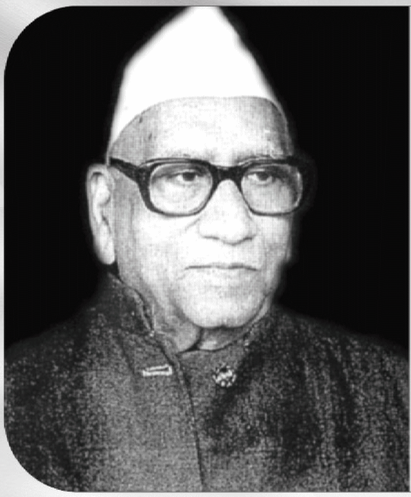

श्री खेमराज गिड़िया
जन्म : 27 दिसम्बर, 1918
देहविलय : 4 अप्रेल, 2003

श्रीमती धुड़ीबाई गिड़िया
जन्म : 1922
देहविलय : 24 नवम्बर, 2012

आप दोनों के विशेष सहयोग से सन् १९८८ में **श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया** ग्रन्थमाला की स्थापना हुई, जिसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष धार्मिक साहित्य एवं पौराणिक कथाएँ प्रकाशित करने की योजना का शुभारम्भ हुआ। इस ग्रन्थमाला के संस्थापक श्री खेमराज गिड़िया का संक्षिप्त परिचय देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं –

जन्म : सन् १९१८ चांदरख (जोधपुर)
पिता : श्री हंसराज, **माता :** श्रीमती मेहंदीबाई

शिक्षा/व्यवसाय : प्रायमरी शिक्षा प्राप्त कर मात्र १२ वर्ष की उम्र में ही व्यवसाय में लग गए।
सत्-समागम : सन् १९५० मेंपूज्य श्रीकानजीस्वामी का परिचय सोनगढ़ में हुआ।

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा : सन् १९५३ में मात्र ३४ वर्ष की आयु में पूज्य स्वामीजी से सोनगढ़ में अल्पकालीन ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा लेकर धर्मसाधन में लग गये।

विशेष : भावनगर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में भगवान के माता-पिता बने।

सन् १९५९ में खैरागढ़ में दिग. जिनमंदिर निर्माण कराया एवं पूज्य गुरुदेवश्री के शुभहस्ते प्रतिष्ठा में विशेष सहयोग दिया।

सन् १९८८ में ७० यात्रियों सहित २५ दिवसीय दक्षिण तीर्थयात्रा संघ निकाला एवं व्यवसाय से निवृत्त होकर अधिकांश समय सोनगढ़ में रहकर आत्म-साधना करते थे।

हम हैं आपके बताए मार्ग पर चलनेवाले

पुत्र : दुलीचन्द, पन्नालाल, मोतीलाल, प्रेमचंद एवं समस्त गिड़िया कुटुम्ब।

पुत्रियाँ : ब्र. ताराबेन एवं ब्र. मैनाबेन।

श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रंथमाला का ३२ पुष्प

जैनधर्म की कहानियाँ

उपसर्गजयी संजयन्त मुनिराज एवं राजा श्रेणिक

(भाग - २४)

संकलक :

प्रेमचंद जैन, खैरागढ़

सम्पादक :

पण्डित रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर

प्रकाशक :

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, खैरागढ़ – ४९१ ८८१

मो. ९४२४१११४८८

और

श्री कहान स्मृति प्रकाशन, कहान रश्मि, सोनगढ़

मो. ८६१९९७५९६५

प्रस्तुत संस्करण - १००० प्रतियाँ कुल : २१०० प्रतियाँ
दशलक्षण पर्व, (सितम्बर, २०२४)
न्यौछावर : 15 रुपये मात्र

अनुक्रमणिका

1.	तद्भव मोक्षगामी उपसर्गविजयी संजयन्त मुनि	9
II	तद्भव मोक्षगामी संजयन्त मुनि का (तीसरा पूर्वभव)	13
III	तद्भव मोक्षगामी संजयन्त मुनि का (दूसरा पूर्वभव)	20
IV	तद्भव मोक्षगामी संजयन्त मुनि का (प्रथम पूर्वभव)	25
❖	अन्तिम पूर्वभव : वज्रायुध व अन्तिम भव : संजयन्त मुनि	26
5.	कार्तिकेय का जन्म, वैराग्य, उपसर्ग और समाधि	28
6.	राजा दंडक की कथा (जटायु का पूर्वभव)	33
7.	देवरति राजा और रक्ता रानी	40
8.	सही निर्णय	46
9.	माँ : एक वह और एक मैं (चामुण्डराय)	४८
10.	तुम मनुष्य बनो	50
11.	500 भाईयों में सर्वश्रेष्ठ श्रेणिक, फिर भी...राजा चिलातपुत्र	51
XII	श्रेणिक का चातुर्य (देश निकाला एवं नंदश्री की प्राप्ति)	56
XIII	श्रेणिक को राज्य एवं रानी चेलना की प्राप्ति	61
XIV	श्रेणिक द्वारा यशोधर मुनिराज पर उपसर्ग एवं बोध प्राप्ति	66
XV	उपसर्गजयी चिलात मुनि	72
16.	श्री सुव्रत मुनिराज (वैद्य बना बंदर और बंदर बना देव)	75
❖	वीरता का मार्ग (पाण्डव मुनिराज)	79

प्राप्ति स्थान

१. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,** ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२०१५
२. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली,** नासिक-४२२ ४०१
३. **तीर्थधाम मंगलायतन,** पो.- सासनी-२०४ २१६ जिला- हाथरस (उ.प्र.)
४. **श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट,** आचार्य कुन्दकुन्द नगर, सोनागिर सिद्धक्षेत्र
५. **श्री रमेशचंद जैन, जयपुर** मो. ८६१९९ ७५९६५, ९४१४७१७८१६

प्रकाशकीय

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी द्वारा प्रभावित आध्यात्मिक क्रान्ति को जन-जन तक पहुँचाने में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का योगदान अविस्मरणीय है, उन्हीं के मार्गदर्शन में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की स्थापना की गई है। फैडरेशन की खैरागढ़ शाखा का गठन २६ दिसम्बर, १९८० को पण्डित ज्ञानचन्दजी, विदिशा के शुभ हस्ते किया गया। तब से आज तक फैडरेशन के सभी उद्देश्यों की पूर्ति इस शाखा के माध्यम से अनवरत हो रही है।

इसके अन्तर्गत् स्वामीजी का सी. डी.व सामूहिक स्वाध्याय, पूजन, भक्ति आदि दैनिक कार्यक्रमों के साथ-साथ साहित्य प्रकाशन, साहित्य विक्रय, श्री वीतराग विद्यालय, ग्रन्थालय, मासिक विधान आदि गतिविधियाँ उल्लेखनीय हैं; साहित्य प्रकाशन के कार्य को गति एवं निरंतरता प्रदान करने के उद्देश्य से सन् १९८८ में श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला की स्थापना की गई।

इस ग्रन्थमाला के परम शिरोमणि संरक्षक सदस्य ५१००१/- में, शिरोमणि संरक्षक सदस्य ३१००१/- में तथा परम संरक्षक सदस्य २१००१/- संरक्षक सदस्य ११००१/- में एवं परम सहायक सदस्य ५००१/- बनाये जाते हैं, जिनके नाम प्रत्येक प्रकाशन में दिये जाते हैं।

पूज्य गुरुदेव के अत्यन्त निकटस्थ अन्तेवासी एवं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन उनकी वाणी को आत्मसात करने एवं लिपिबद्ध करने में लगा दिया – ऐसे ब्र. हरिभाई का हृदय जब पूज्य गुरुदेवश्री का चिर-वियोग (वीर सं. २५०६ में) स्वीकार नहीं कर पा रहा था, ऐसे समय में उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री की मृत देह के समीप बैठे-बैठे संकल्प लिया कि जीवन की सम्पूर्ण शक्ति एवं सम्पत्ति का उपयोग गुरुदेवश्री के स्मरणार्थ ही खर्च करूँगा। तब श्री कहान स्मृति प्रकाशन का जन्म हुआ और एक के बाद एक गुजराती भाषा में सत्साहित्य का प्रकाशन होने लगा, लेकिन अब हिन्दी, गुजराती दोनों भाषा के प्रकाशनों में श्री कहान स्मृति प्रकाशन का सहयोग प्राप्त हो रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप नये-नये प्रकाशन आपके सामने हैं।

साहित्य प्रकाशन के अन्तर्गत् जैनधर्म की कहानियाँ भाग १ से ३१ तक एवं लघु जिनवाणी संग्रह : अनुपम संग्रह, चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी-गुजराती), पाहुड़ दोहा-भव्यामृत शतक-आत्मसाधना सूत्र, विराग सरिता तथा लघुतत्त्वस्फोट, अपराध क्षणभर का (कॉमिक्स) – इसप्रकार ४१ पुष्पों में लगभग ७ लाख ३४ हजार से अधिक प्रतियाँ प्रकाशित होकर पूरे विश्व में धार्मिक संस्कार सिंचन का कार्य कर रही हैं।

प्रस्तुत संस्करण जैनधर्म की कहानियाँ भाग नं. २४ है।

इसमें उपसर्गजयी संजयंत मुनिराज एवं श्रेणिक राजा सहित अन्य भी अनेक प्रेरक कथा प्रसंग विशेष रूप से दिए गये हैं। जो सभी श्री प्रेमचंद जैन, खैरागढ़ ने कथा साहित्य में से संकलित किये हैं। इसका सम्पादन पं. रमेशचंद जैन शास्त्री, जयपुर ने किया है। जिन ग्रंथों का आधार बना कर यह कृति तैयार की गई है, हम सभी के आभारी हैं।

इन कथा-कहानियों का लाभ बाल युवा वृद्ध सभी वर्ग के लोग ले रहे हैं, यही इनकी उपयोगिता तथा आवश्यकता को सिद्ध करती है। इसी कारण इनकी निरन्तर मांग बनी हुई है। आशा है इसका स्वाध्याय कर सभी पाठक गण अवश्य ही बोध प्राप्त कर सन्मार्ग पर चलकर अपना जीवन सफल करेंगे। साहित्य प्रकाशन फण्ड, आजीवन ग्रन्थमाला परमशिरोमणि संरक्षक, शिरोमणि संरक्षक, परमसंरक्षक एवं संरक्षक सदस्यों के रूप में जिन महानुभावों का सहयोग मिला है, हम उन सबका भी हार्दिक आभार प्रकट करते हैं, आशा करते हैं कि भविष्य में भी सभी इसी प्रकार सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

विनीत:

मोतीलाल जैन
अध्यक्ष

पं. अभय जैन शास्त्री
साहित्य प्रकाशन प्रमुख

पुस्तक प्राप्ति, सहयोग राशि एवं बिल भुगतान शांतिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर ट्रस्ट, खैरागढ़ के नाम से भारतीय स्टेट बैंक, खैरागढ़ खाता क्रमांक 10743382296 IFSC-SBIN0000524 में जमा कराके, निम्न मो. नं. 9424111488 पर सूचना देकर रसीद प्राप्त कर सकते हैं।

विनम्र आदराञ्जली

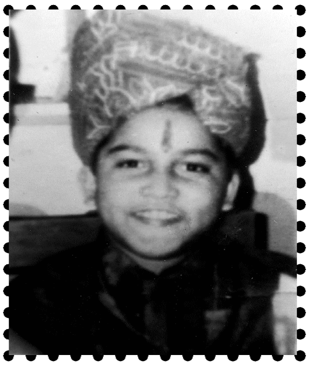

जन्म
१/१२/१९७८
(खैरागढ़, म.प्र.)

स्वर्गवास
२/२/१९९३
(दुर्ग पंचकल्याणक)

स्व. तन्मय (पुखराज) गिड़िया

अल्पवय में अनेक उत्तम संस्कारों से सुरभित, भारत के सभी तीर्थों की यात्रा, पर्वों में यम-नियम में कट्टरता, रात्रि भोजन त्याग, टी.वी. देखना त्याग, देवदर्शन, स्वाध्याय, पूजन आदि छह आवश्यक में हमेशा लीन, सहनशीलता, निर्लोभता, वैरागी, सत्यवादी, दान शीलता से शोभायमान तेरा जीवन धन्य है।

अल्पकाल में तेरा आत्मा असार-संसार से मुक्त होगा (वह स्वयं कहता था कि मेरे अधिक से अधिक ३ भव बाकी हैं।) चिन्मय तत्त्व में सदा के लिए तन्मय हो जावे – ऐसी भावना के साथ यह वियोग का वैराग्यमय प्रसंग हमें भी संसार से विरक्त करके मोक्षपथ की प्रेरणा देता रहे - ऐसी भावना है।

हम हैं

दादा	स्व. श्री कंवरलाल जैन	**दादी**	स्व. मथुराबाई जैन
पिता	श्री मोतीलाल जैन	**माता**	श्रीमती शोभादेवी जैन
बुआ	श्रीमती ढेलाबाई	**फूफा**	स्व. तेजमाल जैन
जीजा	श्री शुद्धात्मप्रकाश जैन	**जीजी**	सौ. श्रद्धा जैन, विदिशा
जीजा	श्री योगेशकुमार जैन	**जीजी**	सौ. क्षमा जैन, धमतरी

ग्रन्थमाला सदस्यों की सूची

परमशिरोमणि संरक्षक सदस्य

श्रीमती सूरजबेन अमुलखभाई सेठ, मुम्बई
एक मुमुक्षु परिवार दादर ह. जयसुखभाई खाटड़ीया
पारसमल महेन्द्रकुमार जैन, ह. सरिता बेन तेजपुर
श्री निर्मलजी बरडिया स्मृति ह. प्रभा जैन राजनांदगांव

शिरोमणि संरक्षक सदस्य

श्री हेमल भीमजी भाई शाह, लन्दन
श्री विनोदभाई देवसीभाई कचराभाई शाह, लन्दन
श्री स्वयं शाह ओस्त्रो ह. शीतल विजेन, लन्दन
श्रीमती ज्योत्सना बेन विजयकान्त शाह, अमेरिका
श्रीमती मनोरमादेवी विनोदकुमार, जयपुर
पं. श्री कैलाशचन्द पवनकुमार जैन, अलीगढ़
श्री जयन्तीलाल चिमनलाल शाह ह. सुशीलाबेन अमेरिका
श्रीमती सोनिया समीत भायाणी प्रशांत भायाणी, अमेरिका
श्रीमती ऊषाबेन प्रमोद सी. शाह, शिकागो
श्रीमती कुसुमबेन चन्द्रकान्तभाई शाह, मुलुण्ड

परमसंरक्षक सदस्य

झनकारीबाई खेमराज बाफना चेरिटेबल ट्रस्ट,खैरागढ़
मीनाबेन सोमचन्द भगवानजी शाह, लन्दन
श्री अभिनन्दनप्रसाद जैन, सहारनपुर
श्रीमती ज्योत्सना महेन्द्र मणीलाल मलाणी, माटुंगा
ब्र. कुसुम जैन, कुम्भोज बाहुबली
श्रीमती पुष्पलता अजितकुमारजी, छिन्दवाड़ा
सौ. सुमन जैन जयकुमारजी जैन डोगरगढ़
स्व. मनहरभाई ह. अभयभाई इन्द्रजीतभाई, मुम्बई
श्री निलय ढेढिया, पार्ला मुम्बई
श्री कुन्दकुन्द कहान जैन तत्त्वप्रचार समिति, दादर
पीनल बेन प्रकाशभाई संघवी, घाटकोपर
मीताबेन परिवार बोरीबली
श्रीमती समता–अमितकुमार जैन, कानपुर
श्रीमती पुष्पा बेन रायसीभाई गाड़ा, घाटकोपर
धरणीधर हीराचंद दामाणी, सोनगढ़
श्रीमती रीमा-विकाश सेठी अंधेरी ह. बेलाबेन सोनी

संरक्षक सदस्य

श्रीमती शान्तिदेवी कोमलचंद जैन, नागपुर
श्रीमती पुष्पाबेन कांतिभाई मोटाणी, बम्बई
श्रीमती हंसुबेन जगदीशभाई लोदरिया, बम्बई
श्रीमती लीलादेवी श्री नवरत्नसिंह चौधरी, भिलाई
श्रीयुत प्रशान्त-अक्षय-सुकान्त-केवल, लन्दन
श्रीमती पुष्पाबेन भीमजीभाई शाह, लन्दन
श्री सुरेशभाई मेहता, बम्बई एवं श्री दिनेशभाई, मोरबी
श्री महेशभाई, बम्बई, प्रकाशभाई मेहता, राजकोट
श्री रमेशभाई नेपाल, श्री राजेशभाई मेहता, मोरबी
श्रीमती वसंतबेन जेवंतलाल मेहता, मोरबी
स्व.हीराबाई, हस्ते-श्री प्रकाशचंद मालू, रायपुर
श्रीमती चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, खैरागढ़
स्व. मथुराबाई कँवरलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती कंचनदेवी दुलीचन्द जैन गिड़िया, खैरागढ़
दमयन्तीबेन हरीलाल शाह चैरिटेबल ट्रस्ट, मुम्बई
श्रीमती रूपाबैन जयन्तीभाई ब्रोकर, मुम्बई
श्री जम्बूकुमार सोनी, इन्दौर
श्रीमती स्नेहलता ध.प. जैनबहादुरजी जैन, कानपुर
श्रीमती विमलाबाई सुरेशचंद जैन, कोलकाता
स्व. अमराबाई-घेवरचंद ह. नरेन्द्र डाकलिया, नांदगांव
श्रीमती सुशीला बेन सुरेशभाई शाह, अहमदावाद
श्रीमती सुशीलाबाई उत्तमचंद गिड़िया, रायपुर
श्री बाबूलाल तोताराम लुहाड़िया, भुसावल
श्री तुषार नलिनकांत देसाई, पालड़ी
श्री ज्योत्सना बेन भूपतभाई शाह, देवलाली
श्री ज्ञानचंद जैन, दिल्ली

परम सहयोगी सदस्य

श्रीमती शोभादेवी मोतीलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती ढेलाबाई तेजमाल नाहटा, खैरागढ़
श्री शैलेषभाई जे. मेहता, नेपाल
ब्र. ताराबेन ब्र. मैनाबेन, सोनगढ़
श्रीमती चन्द्रकला गौतमचन्द बोथरा, भिलाई
श्रीमती गुलाबबेन शांतिलाल जैन, भिलाई
श्रीमती राजकुमारी महावीरप्रसाद सरावगी, कलकत्ता
श्रीमती ममता-रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर
श्री प्रफुल्लचन्द संजयकुमार जैन, भिलाई
स्व. लुनकरण, झीपुबाई कोचर, कटंगी
श्रीमती पुष्पाबेन चन्दुलाल मेघाणी, कलकत्ता
स्व. कंकुबेन रिखबदास जैन ह. शांतिभाई, बम्बई

एक मुमुक्षुभाई, ह. सुकमाल जैन, दिल्ली
स्व. रामलाल पारख, ह. नथमल नांदगांव
श्रीमती जैनाबाई, भिलाई ह. कैलाशचन्द शाह
सौ. रमाबेन नटवरलाल शाह, जलगाँव
श्री फूलचंद विमलचंद झांझरी, उज्जैन
श्रीमती पतासीबाई तिलोकचंद कोठारी, जालबांधा
श्री छोटालाल केशवजी भायाणी, बम्बई
श्रीमती जशवंतीबेन बी. भायाणी, घाटकोपर
स्व. भैरोदान संतोषचन्द कोचर, कटंगी
श्री तखतराज कांतिलाल जैन, कलकत्ता
श्रीमती सुधा सुबोधकुमार सिंघई, सिवनी
गुप्तदान, हस्ते – चन्द्रकला बोथरा, भिलाई
सौ. कमलाबाई कन्हैयालाल डाकलिया, खैरागढ़
श्री सुगालचंद विरधीचंद चोपड़ा, जबलपुर
श्रीमती सुनीतादेवी कोमलचन्द कोठारी, खैरागढ़
श्रीमती स्वर्णलता राकेशकुमार जैन, नागपुर
श्रीमती कंचनदेवी पन्नालाल गिड़िया, खैरागढ़
श्री शान्तिकुमार कुसुमलता पाटनी, छिन्दवाड़ा
श्री छीतरमल बाकलीवाल, जैन ट्रेडर्स, पीसांगन
श्री किसनलाल देवड़िया ह. जयकुमारजी, नागपुर
श्री सुदीपकुमार गुलाबचन्द, नागपुर
सौ. शीलाबाई मुलामचन्दजी, नागपुर
सौ. मोतीदेवी मोतीलाल फलेजिया, अहमदाबाद
समकित महिला मंडल, डोंगरगढ़
श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल, सागर
सौ. शांतिदेवी धनकुमार जैन, सूरत
श्री चिन्द्रूप शाह, ह. श्री दिलीपभाई बम्बई
स्व. फेफाबाई पुसालालजी, बैंगलोर
ललितकुमार डॉ. श्री तेजकुमार गंगवाल, इन्दौर
स्व. नोकचन्दजी, ह. केशरीचंद सावा सिल्हाटी
कु. वंदना पन्नालालजी जैन, झाबुआ
कु. मीना राजकुमार जैन, धार
सौ. वंदना संदीप जैनी ह.कु. श्रेया जैनी, नागपुर
सौ. केशरबाई ध.प. स्व. गुलाबचन्द जैन, नागपुर
जयवंती बेन किशोरकुमार जैन
श्री मनोज शान्तिलाल जैन
श्रीमती शकुन्तला अनिलकुमार जैन, मुंगावली
इंजी.आरती पिता श्री अनिलकुमार जैन, मुंगावली
श्रीमती पानादेवी मोहनलाल सेठी, गोहाटी
श्रीमती माणिकबाई माणिकचन्द जैन, इन्दौर
श्रीमती भूरीबाई स्व. फूलचन्द जैन, जबलपुर
श्री किशोरकुमार राजमल जैन, सोनगढ़
श्री जयपाल जैन, दिल्ली
श्री चेतना महिला मण्डल, खैरागढ़
श्रीमती किरण – एस.के. जैन, खैरागढ़
स्व.गैंदामल ज्ञानचन्द सुमतप्रसाद अनिल जैन, खैरागढ़
स्व. मुकेश गिड़िया स्मृति ह. सरला जैन, खैरागढ़
सौ. सुषमा जिनेन्द्रकुमार, खैरागढ़
श्रीमती श्रुति-अभयकुमार शास्त्री, खैरागढ़
सौ. अचरजकुमारी श्री निहालचन्द जैन, जयपुर
सौ. शोभाबाई भवरीलाल चौधरी, यवतमाल
सौ. ज्योति सन्तोषकुमार जैन, डोभी
श्री कस्तूरी बाई बल्लभदास जैन, जबलपुर
स्व.यशवंत छाजेड़ ह.श्री पन्नालाल छाजेड़, खैरागढ़
श्री आयुष्य जैन संजय जैन, दिल्ली
श्री सम्यक अरुण जैन, दिल्ली
श्री सार्थक अरुण जैन, दिल्ली
श्री केशरीमल नीरज पाटनी, ग्वालियर
श्री परागभाई हरिवदन सत्यपंथी, अहमदाबाद
श्रीमती नम्रता-प्रशम मोदी, सोनगढ़
श्री हेमलाल मनोहरलाल सिंघई, बोनकट्टा
स्व. दुर्गा देवी स्मृति ह. दीपचन्द चौपड़ा, खैरागढ़
शाह श्री कैलाशचन्दजी मोतीलालजी, भिलाई
श्रीमती प्रेक्षादेवी प्रवीणकुमारजी शास्त्री, रायपुर
लक्ष्मीबेन वीरचन्द शाह ह. शारदाबेन, सोनगढ़
श्रीमती चेतनाबेन पारुलभाई भायाणी, मद्रास
श्रीमती स्वाति-आशीष जैन, नवसारी
श्रीमती वर्षाबेन-निरंजनभाई, सुरेन्द्रनगर
श्रीमती रूवी-राजकुमार जैन, दुर्ग
श्रीमती विजया विजयकुमार जैन, विलासपुर
स्व. धरमचंद संचेती ह. किशोरकुमार संचेती, कटंगी
श्रीमती नेहाबेन-जितेन्द्र भाई गोगरी, माटुंगा
श्रीमती लक्ष्मीबेन शशांकभाई शाह, माटुंगा
श्री जयकुमार जैन, शिवपुरी
श्रीमती सुशीला बेन जयन्ती लाल गाला, माटुंगा
लक्ष्मी बेन, ब्र. कुन्ती बेन, सोनगढ़
कु. आरोही, श्रीमती परींदा-राहुल पारिख, न्यूजीलेण्ड
कु. श्रेया श्रीमती मीता-दीपक पारिख, मुम्बई

साहित्य प्रकाशन फण्ड

1001/- श्रीमती चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, खैरागढ़
601/- श्रीमती श्रद्धा-शुद्धात्म प्रकाश जैन, विदिशा
501/- श्री राजेशकुमार जैन रितिक जैन, कटनी
501/- गुप्तदान ह. रीतेश जैन, राजनांदगांव
501/- मीनाबाई ज्ञानचंद समैया, ललितपुर
501/- उमारानी सुरेन्द्र कुमार जैन, सागर
501/- शकुनबाई विनयकुमार जैन ह. श्रीमती स्वर्णा जैन, खैरागढ़
501/- श्रीमती समता अमितकुमार जैन, कानपुर
501/- ब्र. ताराबेन मैनाबेन, सोनगढ़
501/- स्व. श्रीमती कंचनबाई ह. श्री दुलीचंद-कमलेश जैन, खैरागढ़
501/- श्रीमती ऑचल-निश्चल जैन, ह. सरला जैन, खैरागढ़
501/- श्रीमती गुलाबबाई पन्नालाल छाजेड़, ह. ब्र. जमनाबेन खैरागढ़
501/- श्रीमती कंचनबेन जैन लोहारा
501/- मीनाबाई शांतिलाल जैन, भिलाई
501/- श्रीमती साधना संजय जैन, भिलाई
501/- ढ़ेलाबाई चैरीटेवल ट्रस्ट ह. श्री मोतीलाल जैन, खैरागढ़
501/- श्री झनकारीबाई खेमराज बाफना चैरीटेवल ट्रस्ट, खैरागढ़
201/- चि. मर्मज्ञ जैन ह. श्रीमती पूजा साकेत शास्त्री, जयपुर

- भगवंतों के दर्शन का परमार्थ फल इच्छाओं की पूर्ति होना नहीं, इच्छाओं का अभाव होना है।
- विषयों की आसक्तता, कषायों की तीव्रता, परिग्रह की मूर्च्छा में परिणाम कठोर हो जाते हैं।
- इन्द्रिय ज्ञान में ज्ञान का व इन्द्रिय सुख में सुख का भ्रम, संसार का मूल है।

1 तद्भव मोक्षगामी उपसर्ग विजयी संजयन्त मुनि

सुमेरु के पश्चिम की ओर विदेह के अन्तर्गत् गन्धमालिनी नाम का देश है। उसकी प्रधान राजधानी वीतशोकपुर है। जिस समय की यह कथा है, उस समय उसके राजा वैजयन्त थे। उनकी महारानी का नाम भव्यश्री था। उनके दो पुत्र थे, उनके नाम थे संजयन्त और जयन्त।

एक दिन बिजली के गिरने से महाराज वैजयन्त का प्रधान हाथी मर गया। संसार की यह क्षणभंगुरता देखकर उन्हें संसार से वैराग्य हो गया। वे विचारने लगे – अरे ! इस संसार में जन्म के साथ मरण तो लगा ही है। इस अशरण संसार में पञ्च परमेष्ठी एवं निज शुद्धात्मा ही शरण है। धिक्कार है मुझे ! मैंने सांसारिक विषय–कषायों में फँसकर अब तक अपना मानवजीवन व्यर्थ गवाँ दिया है। एक दिन इस हाथी जैसी ही दशा मेरी होनेवाली है। अहा ! मरण का समय आने से पूर्व ही मुझे मुनिदशा अङ्गीकार करके मुक्ति की साधना कर लेना चाहिए।

इस प्रकार विचार करके उन्होंने दीक्षा लेकर आत्मसाधना करने का निश्चय कर लिया। अपने दोनों पुत्रों को बुलाकर उन्हें राज्यभार सौंपना चाहा; तब दोनों भाइयों ने उनसे कहा –

‘पिताजी, राज्य तो संसार के बढ़ाने का कारण है, इससे तो उल्टा हमें सुख की जगह दुःख भोगना पड़ेगा; इसलिए हम तो इसे अङ्गीकार नहीं करेंगे। आप भी तो इसीलिए छोड़ते हैं न, कि यह बुरा है, पाप का कारण है। हमारा तो विश्वास है कि बुद्धिमानों

को, आत्महित के चाहनेवालों को, राज्यभार की झंझटों को सिर पर उठाकर अपनी स्वाभाविक शान्ति को नष्ट नहीं करना चाहिए। यही विचार कर हम राज्य लेना उचित नहीं समझते। हम तो आपके साथ ही साधु बनकर अपना आत्महित करेंगे।'

वैजयन्त राजा ने पुत्रों पर अधिक दबाव न डालकर उनकी इच्छा के अनुसार उन्हें मुनिदीक्षा की आज्ञा दे दी और राज्य का भार संजयन्त के पुत्र को देकर स्वयं भी तपस्वी बन गये। साथ ही वे दोनों भाई भी साधु हो गये।

दीक्षा लेकर वैजयन्त मुनिराज महान् तपश्चर्या करने लगे, कठिन से कठिन परीषह सहन करने लगे। अन्त में ध्यानरूपी अग्नि से घातिया कर्मों का नाश करके उन्होंने लोकालोक का प्रकाशक केवलज्ञान प्राप्त किया। उस समय उनके ज्ञानकल्याण की पूजा करने को स्वर्ग से देव आये। उनके स्वर्गीय ऐश्वर्य और उनकी दिव्य सुन्दरता को देखकर संजयन्त के छोटे भाई जयन्त ने निदान किया – 'मैंने जो इतना तपश्चरण किया है, मैं चाहता हूँ कि उसके प्रभाव से मुझे दूसरे जन्म में ऐसी ही सुन्दरता और ऐसी ही विभूति प्राप्त हो।' वही हुआ, उसका किया निदान उसे फलित हुआ, वह आयु के अन्त में मरकर धरणेन्द्र हुआ।

इधर संजयन्त मुनि पन्द्रह–पन्द्रह दिन के, एक–एक महीना के उपवास करने लगे, भूख–प्यास की कुछ परवाह न कर बड़ी धीरता के साथ परीषह सहने लगे। उनका शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया, फिर भी वे भयङ्कर वनों में सुमेरु के समान निश्चल रहकर तपश्चर्या करने लगे। गर्मी के दिनों में अत्यन्त गर्मी पड़ती; शीत के दिनों में अत्यन्त शीत और वर्षा के समय मूसलाधार पानी बरसता – ऐसे अवसर में भी वे धीर–वीर मुनिराज निश्चल ध्यान करते। वन के जीव–जन्तु सताते, पर इन सब कष्टों की कुछ परवाह न करते हुए आप सदा आत्मध्यान में लीन रहते।

एक दिन की बात है संजयन्त मुनिराज तो आत्मध्यान में तल्लीन

थे, उसी समय विद्युद्दंष्ट्र नाम का विद्याधर आकाशमार्ग से उधर होकर निकला। मुनि के प्रभाव से उसका विमान आगे नहीं बढ़ पाया। एकाएक विमान को रुका हुआ देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने नीचे की ओर दृष्टि डालकर देखा तो उसे संजयन्त मुनि दृष्टिगोचर हुए। उन्हें देखते ही उसका आश्चर्य, क्रोध में परिणत हो गया। उसने मुनिराज को अपना विमान रोकनेवाला समझकर उन पर नाना तरह के भयङ्कर उपसर्ग करना शुरु कर दिये; क्रोधावेश में आकर मुनिराज को बहुत कष्ट पहुँचाया परन्तु मुनिराज उसके उपद्रवों से रञ्चमात्र भी विचलित नहीं हुए। वे जैसे निश्चल थे, वैसे ही खड़े रहे।

सच है, वायु का कितना ही भयङ्कर वेग क्यों न चले, पर सुमेरु तो कभी हिलता भी नहीं।

इन सब भयङ्कर उपद्रवों से भी जब उसने मुनिराज को सुमेरुवत् अचल देखा, तब उसका क्रोध और भी अधिक बढ़ गया। वह अपने विद्याबल से मुनिराज को वहाँ से उठा कर ले चला और भारतवर्ष में पूर्व दिशा की ओर बहनेवाली सिंहवती नाम की एक बड़ी विशाल नदी में, जिसमें कि पाँच बड़ी-बड़ी नदियाँ और मिली थीं, डाल दिया। भाग्य से उस प्रान्त के लोग भी बड़े पापी थे; अतः उन्होंने मुनिराज को एक राक्षस समझकर सर्व साधारण में यह प्रचार कर दिया कि यह हमें खाने के लिये आया है अत: सबने क्रोधित होकर मुनिराज को पत्थर मार-मार कर बहुत कष्ट पहुँचाया।

मुनिराज ने यह सब उपद्रव अत्यन्त शान्ति के साथ सहा। उन्होंने अपने पूर्ण आत्मबल के प्रभाव से हृदय को लेशमात्र भी अधीर नहीं बनने दिया; क्योंकि सच्चे साधु वे ही हैं – ''**जिनके पास राग-द्वेष बढ़ानेवाला परिग्रह नहीं है, जो निर्ग्रन्थ हैं और सदा शान्तचित्त रहते हैं, उन साधुओं के लिये तृण हो या रत्न; शत्रु हो या मित्र; उनकी कोई प्रशंसा करो या बुराई; वे जीवें अथवा मर जाएँ;**

उन्हें सुख हो या दुःख और उनके रहने को श्मशान हो या महल उनकी दृष्टि सब पर समान रहती है, वे किसी से प्रेम या द्वेष न कर सब पर समभाव रखते हैं।''

संजयन्त मुनि का छोटा भाई जो निदान करके धरणेन्द्र हुआ था। आज उसे भी अपने भाई संजयन्त मुनि की याद आ रही थी, अत: उसने जानने की इच्छा से अपने अवधिज्ञान का प्रयोग किया जिससे उसने जाना कि कुछ लोग उन्हें बुरी तरह मार रहे हैं, अत: वह तत्काल वहाँ आया और उसने उन्हें अपने ऋद्धिबल से नागपाश द्वारा बाँधकर कष्ट देने लगा। उन सबने हाथ जोड़कर उससे कहा – 'प्रभो ! हम तो इस अपराध से सर्वथा निर्दोष हैं। आप हमें व्यर्थ ही कष्ट दे रहे हो। यह सब कर्म तो पापी विद्युद्दंष्ट्र विद्याधर का है। आप उसे ही पकड़िये न !' इतना सुनते ही धरणेन्द्र, विद्याधर को पकड़ने के लिये दौड़ा और उसके पास पहुँचकर उसे अपने नागपाश से बाँध लिया। तत्पश्चात् उसे बहुत मार–पीटकर समुद्र में डालना चाहा।

धरणेन्द्र का इसप्रकार निर्दय व्यवहार देखकर एक दिवाकर नाम के दयालु देव ने उससे कहा – 'भाई ! तुम इसे व्यर्थ ही क्यों कष्ट दे रहे हो ? इसकी तो संजयन्त मुनि के साथ पूर्व के अनेक भवों से शत्रुता चली आ रही है। इसी कारण इसने मुनि पर उपसर्ग किया है।'

संयजन्त मुनि ने सभी कष्ट समभाव से सहन कर, अपने अलौकिक धैर्य का परिचय दिया। इस अपूर्व ध्यान के बल से संजयन्त मुनि ने चार घातिया कर्मों का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया और इसके बाद अघातिया कर्मों का भी नाश कर वे मोक्ष चले गये।

यदि पाठकगण भी इनके पूर्वभव जानना चाहते हैं तो आगामी पूर्वभव संबंधी कथाएँ अवश्य पढ़ें।

2 तद्भव मोक्षगामी संजयन्तमुनि का (तीसरा पूर्वभव : राजा सिंहसेन)

'पहले समय में भारतवर्ष में एक सिंहपुर नाम का शहर था। उसके राजा सिंहसेन थे। वे बड़े बुद्धिमान् और राजनीति के अच्छे जानकार थे। उनकी रानी का नाम रामदत्ता था। वह बुद्धिमती और बड़ी सरल स्वभावी थी। राजपुरोहित का नाम श्रीभूति था, वह बड़ा कुटिल था, दूसरों को धोखा देना, उन्हें ठगना ही उसका प्रधान कर्म था।

(1)

एक दिन पद्मखण्डपुर के रहनेवाले सुमित्र सेठ का पुत्र समुद्रदत्त, श्रीभूति के पास आया और उससे बोला – 'महाशय ! मैंने आपकी ईमानदारी के चर्चे पूरे शहर में सुने हैं। मैं व्यापार के लिये विदेश जा रहा हूँ। दैव की विचित्र लीला है, न जाने कब कैसा समय आ जावे, इसलिए मेरे पास ये पाँच रत्न हैं, इन्हें आप अपनी सुरक्षा में रखें तो अच्छा होगा और मुझ पर आपकी बड़ी दया होगी। मैं वापस आकर अपने रत्न ले लूँगा।' यह कहकर और श्रीभूति को रत्न सौंपकर समुद्रदत्त विदेशयात्रा पर चला गया।

कई वर्ष बाद समुद्रदत्त विदेश से वापस आया। वह बहुत धन कमाकर लाया था। जाते समय जैसा उसने सोचा था, दैव की प्रतिकूलता से वही घटना उसके साथ घटित हो गयी। किनारे लगते-लगते जहाज फट गया और सब माल समुद्र के विशाल उदर में समा गया। पुण्योदय से समुद्रदत्त को कुछ ऐसा सहारा मिल गया, जिससे उसके प्राण बच गये। वह कुशलता पूर्वक अपना जीवन लेकर घर लौट आया।

दूसरे दिन वह श्रीभूति के पास गया और अपने पर जैसी विपत्ति आई थी, उसे आदि से अन्त तक कहकर श्रीभूति से अपने अमानत रखे हुए रत्न माँगे। श्रीभूति ने आँखें चढ़ाकर कहा – 'तू मुझसे कैसे रत्न माँगता है? ज्ञात होता है कि जहाज डूब जाने से तेरा मस्तिक बिगड़ गया है।'

इसप्रकार श्रीभूति ने बेचारे समुद्रदत्त को मनमानी फटकार लगाकर अपने पास बैठे हुए लोगों से कहा – 'देखो, भाईयो ! मैंने आपसे अभी कहा था न कि कोई निर्धन मनुष्य पागल बनकर मेरे पास आवेगा और व्यर्थ का विसंवाद करेगा। वही सत्य निकला। जरा सोचिये तो, ऐसे दरिद्री व्यक्ति के पास रत्न देखे हैं? यह व्यर्थ ही मेरे गले पड़ता है।' ऐसा कहकर उसने नौकरों द्वारा समुद्रदत्त को अपने घर से बाहर निकलवा दिया।

बेचारा समुद्रदत्त एक तो वैसे ही विपत्ति का मारा हुआ था, इसके सिवा उसे जो एक बड़ी भारी आशा थी, वह भी पापी श्रीभूति के कारण निराशा एवं उद्‌विग्नता में बदल गई। वह सब ओर से अनाथ होकर निराशा के अथाह समुद्र में गोते खाने लगा। पहले तो उसे अच्छा होने पर भी श्रीभूति ने पागल बना डाला था, परन्तु अब वह सचमुच ही पागलवत् हो गया। वह शहर में घूम-घूमकर चिल्लाने लगा कि पापी श्रीभूति ने मेरे पाँच रत्न ले लिये हैं, अब वह उन्हें देता नहीं है। राजमहल के पास भी उसने बहुत पुकार लगाई, पर उसकी कहीं सुनाई नहीं हुई। सब उसे पागल समझकर दुत्कार देते थे। अन्त में निरुपाय हो उसने रानी के महल के पीछे स्थित एक वृक्ष पर चढ़कर, पिछली रात को बड़े जोर से चिल्लाना आरम्भ किया। रानी ने बहुत दिनों तक तो उस पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। उसने भी यही समझ लिया कि कोई पागल चिल्लाता होगा; किन्तु

एक दिन उसे ख्याल हुआ कि वह पागल होता तो प्रतिदिन इसी समय आकर क्यों चिल्लाता? सारे दिन ही इसी तरह आकर क्यों नहीं चिल्लाता फिरता? इसमें कुछ रहस्य अवश्य है। यह विचार कर उसने एक दिन राजा से कहा –

'प्राणनाथ ! आप इस चिल्लानेवाले को पागल बताते हैं पर मेरी समझ में यह बात नहीं आती क्योंकि यदि वह पागल होता तो, न तो बराबर इसी समय चिल्लाता और न सदा एक ही वाक्य बोलता। इसलिए इसका ठीक–ठीक पता लगाना चाहिए कि बात क्या है? ऐसा न हो कि अन्याय से बेचारा एक गरीब बिना मौत मारा जाए।'

रानी के कथनानुसार राजा ने समुद्रदत्त को बुलाकर सब बातें पूछीं। समुद्रदत्त ने जैसी अपने पर बीती थी, वह ज्यों की त्यों महाराज से कह सुनाई। रानी बड़ी बुद्धिमती थी; इसलिए रत्नों के मँगवा लेने की जिम्मेदारी उसने अपने ऊपर ले ली।

रानी ने एक दिन श्रीभूति को बुलाया और उससे कहा – 'मैं, आपकी शतरंज खेलने में बड़ी प्रशंसा सुना करती हूँ। मेरी बहुत दिनों से इच्छा थी कि मैं एक दिन आपके साथ शतरंज खेलूँ। आज बड़ा सुयोग मिला जो आप यहीं पर उपस्थित हैं।' यह कहकर उसने दासी को शतरंज ले आने की आज्ञा दी।

श्रीभूति, रानी की बात सुनते ही घबरा गया। उसके मुँह से एक शब्द तक निकलना मुश्किल पड़ गया। उसने बड़ी घबराहट के साथ काँपते–काँपते कहा – 'महारानीजी ! आज आप यह क्या कह रही हैं। मैं एक क्षुद्र कर्मचारी और आपके साथ शतरंज खेलूँ? यह मुझसे नहीं होगा। भला, राजा साहब सुनेंगे तो मेरा क्या हाल होगा?'

रानी ने कुछ मुस्कराते हुए कहा – 'वाह, आप तो बहुत डरते हैं। आप घबराइये मत। मैंने स्वयं राजा साहब से पूछ लिया है और

फिर आप तो हमारे बुजुर्ग हैं, इसमें डर की बात ही क्या है? मैं तो केवल विनोदवश ही आपके साथ शतरंज खेल रही हूँ।'

'राजा की आज्ञा मैंने स्वयं ले ली है' रानी के मुँह से यह वाक्य सुना तब श्रीभूति भी रानी के साथ खेलने के लिये तैयार हो गया। दोनों का खेल आरम्भ हुआ।

रानी के लिये खेल का तो केवल एक बहाना था; वस्तुतः तो उसे अपना प्रयोजन साधना था, इसीलिए उसने यह चाल चली थी। रानी ने खेलते-खेलते श्रीभूति को अपनी बातों में लुभाकर उसके घर की सब बातें जान ली और इशारे से अपनी दासी को कुछ बातें बतलाकर श्रीभूति के यहाँ भेज दिया।

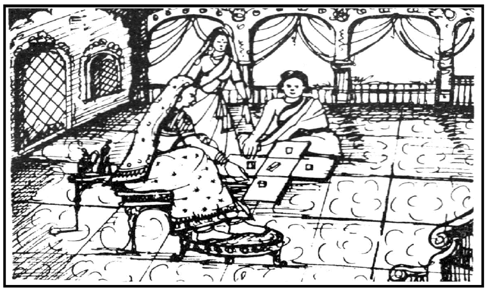

दासी ने जाकर श्रीभूति की पत्नी से कहा – 'तुम्हारे पति बड़े कष्ट में फँसे हैं, इसलिए तुम्हारे पास उन्होंने जो पाँच रत्न रखे हैं, उन्हें लेने मुझे भेजा है। कृपा करके वे रत्न जल्दी दे दो, जिससे उनका छुटकारा हो सके।'

श्रीभूति की पत्नि ने उसे फटकारते हुए कहा – 'चल, मेरे पास कोई रत्न नहीं है और न मुझे कुछ ज्ञात है। जाकर उन्हीं से कह दे कि जहाँ रत्न रखे हों, वहाँ से तुम्हीं आकर ले जाओ।

दासी ने लौटकर सब हाल अपनी मालकिन से कह दिया। रानी ने अपनी चाल का कुछ उपयोग नहीं हुआ देखकर दूसरी युक्ति निकाली। इस बार वह हार-जीत का खेल खेलने लगी। श्रीभूति ने पहले तो कुछ आनाकानी की, पर फिर 'रानी के पास धन का तो कुछ पार नहीं है और मेरी जीत होगी तो मैं मालामाल हो जाऊँगा'

- यह सोचकर वह खेलने के लिए तैयार हो गया।

रानी बड़ी चतुर थी। उसने पहले ही पासे में श्रीभूति की एक कीमती अँगूठी जीत ली। उस अँगूठी को चुपके से दासी के हाथ देकर और सबकुछ समझाकर उसे श्रीभूति के घर भेज दिया और स्वयं उसके साथ खेलने लगी।

इस बार रानी का प्रयत्न व्यर्थ नहीं गया। दासी ने पहुँचते ही बड़ी घबराहट के साथ कहा - 'देखो, पहले तुमने रत्न नहीं दिये, इससे उन्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ा। अब उन्होंने यह अँगूठी देकर मुझे भेजा है और यह कहलाया है कि यदि तुम्हें मेरे प्राण प्रिय हों, तो इस अँगूठी को देखते ही रत्न दे देना और रत्न प्यारे हों तो मत देना, इससे अधिक मैं और कुछ नहीं कहता।'

अब तो पुरोहित-पत्नि एकदम घबरा गयी, उसने दासी से कुछ विशेष पूछताछ न करके केवल अँगूठी के भरोसे पर रत्न निकालकर दासी के हाथ सौंप दिये। दासी ने रत्नों को लाकर रानी को दे दिये और रानी ने वे पाँचों रत्न राजा के पास पहुँचा दिये।

राजा को रत्न देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने रानी की बुद्धिमानी को बहुत-बहुत धन्यवाद दिया। इसके बाद उन्होंने समुद्रदत्त को बुलाया और उन रत्नों को अन्य बहुत से रत्नों में मिलाकर उससे कहा - 'देखो, इन रत्नों में तुम्हारे रत्न हैं क्या ? और हों तो उन्हें निकाल लो।' समुद्रदत्त ने अपने रत्नों को पहचान कर निकाल लिया। **सच है, बहुत समय बीत जाने पर भी अपनी वस्तु को कोई नहीं भूलता।**

इसके बाद राजा ने श्रीभूति को राजसभा में बुलाया और रत्नों को उसके सामने रखकर कहा - 'कहिये, आप तो इस बेचारे के रत्नों को हड़पकर उल्टा इसे ही पागल बनाते थे न ? यदि महारानी मुझसे

आग्रह न करती और अपनी बुद्धिमानी से इन रत्नों को प्राप्त नहीं करती, तब यह बेचारा गरीब तो व्यर्थ मारा जाता और मेरे सिर पर कलङ्क का टीका लगता। क्या इतने उच्च अधिकारी बनकर मेरी प्रजा का इसी तरह तुमने सर्वस्व हरण किया है?'

राजा को बड़ा क्रोध आया। उसने पूरी राजसभा से पूछा -

'कहो ! इस महापापी को इसके पाप का क्या दण्ड दिया जाए, जिससे कोई दूसरा ऐसा पाप करने से पहले 100 बार सोचे और इस दुरात्मा का जैसा भयङ्कर कर्म है, उसी के उपयुक्त इसे उसका दण्ड भी मिल जाए?'

पूरी राजसभा ने विचार कर सर्वसम्मति से कहा - 'महाराज ! जैसा इन महाशय का नीच कर्म है, उसके योग्य हम तीन दण्ड उपयुक्त समझते हैं और उनमें से जो इन्हें पसन्द हो, वही ये स्वीकार करें।

वे तीन दण्ड हैं – (1) इन्हें एक सेर पक्का गोबर खिलाया जाए।

(2) मल्ल के द्वारा बत्तीस घूँसे लगवाये जाएँ या

(3) सर्वस्व हरण कर देश निकाला दे दिया जाए।

राजा ने अधिकारियों के कहे अनुसार दण्ड की योजना कर श्रीभूति से कहा - 'तुम्हें जो दण्ड स्वीकार हो, वह बतलाओ।'

पहले श्रीभूति ने गोबर खाना स्वीकार किया, परन्तु उसका एक ग्रास भी नहीं खाया गया। तब उसने मल्ल के घूँसे खाना आरम्भ किये, कुछ घूँसों की मार में ही उसका आत्मा, शरीर का परित्याग कर चल बसा। उसकी मृत्यु महा आर्त्तध्यान से हुई और वह मरकर राजा सिहंसेन के खजाने पर ही एक विकराल सर्प हुआ।

इधर समुद्रदत्त को इस घटना से बड़ा वैराग्य हुआ। उसने संसार की दशा देखकर उसमें अपने को फँसाना उचित नहीं समझा। वह

उसी समय अपना सब धन परोपकार के कामों में लगाकर वन की ओर चल दिया और धर्माचार्य नाम के महामुनि से पवित्र धर्म का उपदेश सुनकर दिगम्बर दीक्षा धारण कर तपश्चर्या करने लगा। इसके बाद आयु के अन्त में मृत्यु प्राप्त कर वह इन्हीं सिंहसेन राजा के सिंहचन्द्र नामक पुत्र हुआ।

एक दिन राजा सिंहसेन अपना खजाना देखने के लिये गया, उन्हें देखकर श्रीभूति के जीव को, जो कि सर्प बनकर खजाने पर बैठा था, उसे बड़ा क्रोध आया। क्रोधवश उसने राजा को काट खाया। राजा बेहोश हो गया।

सर्प के द्वारा काटे जाने पर राजा मूर्च्छित हो मरणसन्मुख हो गया। यह देखकर सुघोष मन्त्री को बड़ा क्रोध आया। उसने अपने मन्त्रबल से बहुत से सर्पों को बुलाकर कहा – 'यदि तुम निर्दोष हो तो इस अग्निकुण्ड में प्रवेश करते हुए अपने-अपने स्थान पर चले जाओ। तुम्हें ऐसा करने से कुछ भी न होगा।' जितने बाहर के सर्प आये थे वे सब तो चले गये। अब श्रीभूति का जीव बाकी रह गया। उससे कहा गया कि 'या तो तू विष खींचकर राजा को मरने से बचा ले या इस अग्निकुण्ड में प्रवेश कर। उसने अग्निकुण्ड में प्रवेश करना उचित समझा, पर विष खींच लेना उचित नहीं समझा। वह क्रोधवश अग्नि में प्रवेश कर गया। प्रवेश करते ही वह देखते-देखते जलकर खाक हो गया।

अरेरे ! अपने बैर को पूरा करने हेतु यह जीव अपने प्राण भी गंवा देता है। पर यह नहीं जानता कि इस पर्याय के विनाश से बँधा हुआ पापकर्म तो नष्ट नहीं होगा, बल्कि और अधिक दृढ़ होकर नरकादि के दुख का कारण होगा। जहाँ आत्महत्या करने का भी अवसर नहीं मिलेगा। अत: हमें किसी भी कीमत पर किसी से भी बैर नहीं रखना चाहिए। ❖

3 तद्भव मोक्षगामी संजयन्तमुनि का (दूसरा पूर्वभव : हाथी)

उधर राजा सिंहसेन आर्त्तध्यान से मरकर सल्लकी नामक वन में हाथी हुए। उसी सल्लकी वन में वह सर्प (श्रीभूति) का जीव भी मरकर मुर्गा हुआ। सच है, **पापियों का कुयोनियों में उत्पन्न होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।**

❖ ❖❖

इधर तो ये सब अपने-अपने कर्मों के अनुसार दूसरे भवों में उत्पन्न हुए और उधर सिंहसेन की रानी पति-वियोग से बहुत दुःखी हुई। फिर संसार की क्षणभंगुर लीला को यादकर उसे वैराग्य हुआ। वह उसी समय संसार का मायाजाल तोड़कर वनश्री आर्यिका के पास अर्जिका बन गई।

सिंहसेन का पुत्र सिंहचन्द्र भी वैराग्य के वश हो, अपने छोटे भाई पूर्णचन्द्र को राज्यभार सौंपकर, सुव्रत नामक मुनिराज के पास दीक्षित हो गया। साधु होकर सिंहचन्द्र मुनि ने महा तपश्चर्या की, शान्ति और धीरता के साथ परीषहों पर विजय प्राप्त किया, इन्द्रियों को वश में किया और चंचल मन को दूसरी ओर से रोककर धर्मध्यान में लगाया। अन्त में ध्यान के बल से उन्हें मनःपर्ययज्ञान प्राप्त हुआ। उन्हें मनःपर्ययज्ञान से युक्त देखकर उनकी माता ने, जो कि इन्हीं के पहले आर्यिका हुई थीं, नमस्कार कर पूछा- साधुराज ! मेरी कूँख धन्य है, वह आज कृतार्थ हुई, जिसने आप जैसे पुरुषोत्तम को धारण किया। मुझे यह जिज्ञासा है कि मेरा छोटा पुत्र पूर्णचन्द्र, आत्महित के लिये कब उद्यत होगा ? कृपया समाधान कीजिए।

मुनि सिंहचन्द्र बोले - 'माता ! सुनो, मैं तुम्हें इस संसार की

विचित्र लीला सुनाता हूँ, जिसे सुनकर तुम भी आश्चर्य करोगी। तुम जानती हो कि पिताजी को सर्प ने काटा था और उसी से उनकी मृत्यु हो गयी थी। वे मरकर सल्लकी वन में हाथी हुए। वे ही पिता हाथी की पर्याय में एक दिन मुझे मारने के लिये मुझ पर झपटे, तब मैंने समझाया और कहा -

'गजेन्द्रराज ! जानते हो, तूम पूर्व जन्म में राजा सिंहसेन थे और मैं प्राणों से भी प्यारा सिंहचन्द्र नाम का तुम्हारा पुत्र था। कैसा आश्चर्य है कि आज पिता ही पुत्र को मारना चाहता है।' मेरे इन शब्दों को सुनते ही गजेन्द्र को जातिस्मरण हो आया और वह रोने लगा, उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। उसकी यह अवस्था देखकर मैंने उसे जिनधर्म का उपदेश दिया और पंचाणुव्रत का स्वरूप समझाकर उसे अणुव्रत ग्रहण करने को कहा। उसने अणुव्रत ग्रहण किये और पश्चात् वह प्रासुक भोजन और प्रासुक जल से अपना निर्वाह कर व्रत का दृढ़ता के साथ पालन करने लगा।

एक दिन वह जल पीने के लिये नदी प्रवेश करते समय कीचड़ में फँस गया, उसने निकलने की बहुत चेष्टा की पर वह निकलने में सफल नहीं हुआ। अपना निकलना असम्भव समझकर, उसने समाधि मरण की प्रतिज्ञा ले ली। उस समय श्री-भूति का जीव, जो मुर्गा हुआ था, हाथी के सिर पर बैठकर उसका माँस खाने लगा।

हाथी पर बड़ा

उपसर्ग आया, परन्तु उसने उसकी कुछ परवाह न करके बड़ी धीरता के साथ आराधना की और आयु के अन्त में शान्ति के साथ मृत्यु प्राप्त कर वह सहस्रार स्वर्ग में देव हुआ। सच ही है, **धर्म के सिवाय कल्याण का और कोई कारण हो ही नहीं सकता ?**

वह मुर्गा भी बहुत कष्टों को सहन कर मरा और तीव्र पापकर्म के उदय से चौथे नरक में जाकर उत्पन्न हुआ, जहाँ अनन्त दुःख हैं और जबतक आयु पूर्ण नहीं होती, तबतक पलक गिराने मात्र भी सुख प्राप्त नहीं होता।

सिंहसेन का जीव, जो हाथी हुआ था उसके दाँत और कपोलों में से निकले हुए मोती, एक भील के हाथ लगे। भील ने उन्हें एक धनमित्र नामक साहूकार के हाथ बेच दिये और धनमित्र ने उन्हें सर्वश्रेष्ठ और कीमती समझकर राजा पूर्णचन्द्र को भेंट कर दिये। राजा उन्हें देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने उनके बदले में धनमित्र को खूब धन दिया। इसके बाद राजा ने दाँतों के तो अपने पलङ्ग के पाये बनवाये और मोतियों का रानी के लिये हार बनवा दिया। इस समय वह विषयसुख में मग्न होकर अपना काल बिता रहा है।

यह संसार की विचित्र दशा है। क्षण-क्षण में क्या होता है ? - इसे ज्ञानी के अलावा कोई नहीं जान पाता और इसी से जीवों को संसार के दुःख भोगना पड़ते हैं। माता ! पूर्णचन्द्र के कल्याण का एक मार्ग है, यदि तुम जाकर उपदेश दो और यह सब घटना उसे सुनाओ तो वह अवश्य अपने कल्याण की ओर दृष्टि देगा।

❖ ❖❖

मुनिराज सिंहचन्द्र (पुत्र) के वचन सुनते ही वह (अर्जिका माता) महल में पहुँचीं। अपनी माता को देखते ही पूर्णचन्द्र ने बड़े विनय

से उनका सत्कार करके उनके लिये पवित्र आसन प्रदान किया और हाथ जोड़कर बोला – 'माताजी ! आपने अपने पवित्र चरणों से इस घर को पवित्र किया, उससे मुझे जो प्रसन्नता हुई वह वचनों द्वारा नहीं कही जा सकती। यदि मुझे आप अपनी आज्ञा का पात्र बनावेंगी तो मैं अपने जीवन को सफल समझूँगा।'

अर्जिका माता बोलीं – 'मुझे एक आवश्यक बात की ओर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करना है; इसीलिए मैं यहाँ आई हूँ और वह बड़ी विलक्षण बात है, सुनते हो न ? पूर्णचन्द्र के हाँ कहने पर आर्यिका माता ने यों कहना आरम्भ किया –

'पुत्र ! जानते हो, तुम्हारे पिता को सर्प ने काटा था, उसकी वेदना से मरकर वे सल्लकी वन में हाथी हुए और सर्प मरकर उसी वन में मुर्गा हुआ। एक दिन हाथी जल पीने गया। वह नदी के किनारे अत्यन्त गहरे कीचड़ में फँस गया। वह उसमें से किसी तरह निकल नहीं सका। अन्त में निरुपाय होकर वह समाधिमरण कर स्वर्ग गया। उसके दाँत और मोती एक भील के हाथ लगे। भील ने उन्हें एक सेठ के हाथ

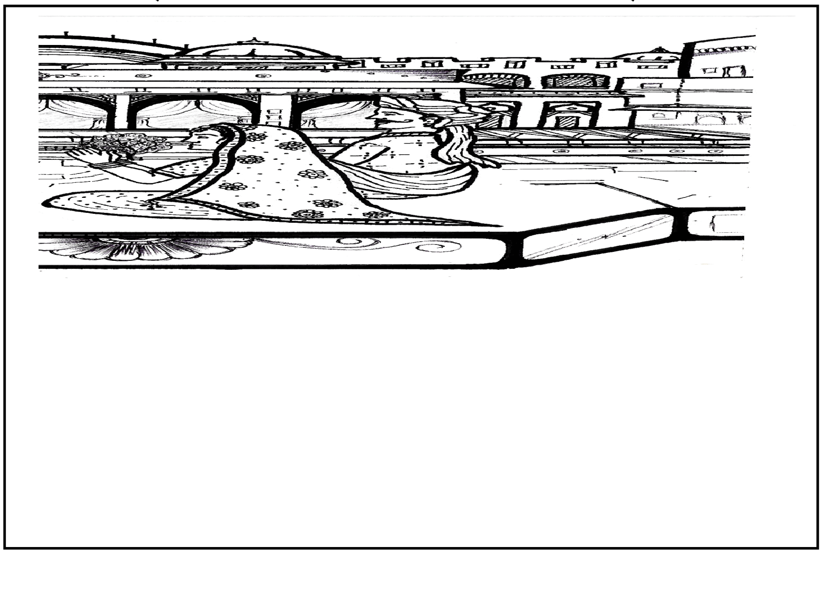

बेच दिये। सेठ के द्वारा वे ही दाँत और मोती तुम्हारे पास आये। तुमने दाँतों के तो पलङ्ग के पाये बनवाये और मोतियों का अपनी पत्नी के लिये हार बनवाया। यह संसार की विचित्र लीला है। अब तुम्हें जो उचित जान पड़े सो करो।'

आर्यिका माताजी इतना कहकर चुप हो गयी। पूर्णचन्द्र अपने पिता की कथा सुनकर रो पड़े। उनका हृदय पिता के शोक से संतप्त हो उठा। जैसे दावाग्नि से पर्वत सतप्त हो उठता है। उनके रोने के साथ ही सारे अन्तःपुर में हाहाकार मच गया। उन्होंने पितृप्रेम के वश हो उन पलङ्ग के पायों को छाती से लगाया। इसके बाद उन्होंने पलङ्ग के पायों और मोतियों को चन्दनादि से पूजा कर जला दिया। ठीक है, **मोह के वश होकर यह जीव क्या-क्या नहीं करता ?**

इसमें कोई सन्देह नहीं कि मोह का चक्र जब अच्छे-अच्छे महात्माओं पर भी चल जाता है, तब पूर्णचन्द्र पर उसका प्रभाव पड़ना कोई आश्चर्य का कारण नहीं है। पूर्णचन्द्र बुद्धिमान थे, उन्होंने झट से अपने को सम्हाल लिया और पवित्र श्रावकधर्म को ग्रहण कर बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ उनका पालन करने लगे। फिर आयु के अन्त में वे पवित्र भावों से मृत्यु प्राप्त कर महाशुक्र नामक स्वर्ग में देव हुए।

उनकी माता भी अपनी शक्ति के अनुसार तपश्चर्या कर उसी स्वर्ग में देव हुई। सच है, संसार में जन्म लेकर कौन-कौन काल के ग्रास नहीं बने? मनःपर्ययज्ञान के धारक सिंहचन्द्र मुनि भी तपश्चर्या और निर्मल चारित्र के प्रभाव से मृत्यु प्राप्त कर ग्रैवैयक में जाकर देव हुए।

दुखी तो मिथ्याश्रद्धान से होता है परन्तु अपने श्रद्धान के अनुसार जो पदार्थ न प्रवर्ते, उसे दुखदायक मानता है।... इसीप्रकार अन्यत्र जानना। – मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृष्ठ 82

4 तद्भव मोक्षगामी संजयन्तमुनि का
(पहला पूर्वभव : राजकुमार रश्मिवेग)

भारतवर्ष के अन्तर्गत् सूर्याभपुर नामक एक शहर था। उसके राजा का नाम सुरावर्त था। वे बड़े बुद्धिमान् और तेजस्वी थे। उनकी महारानी का नाम यशोधरा था। वह भी अत्यंत रूपवान, बुद्धिमती, सरल स्वभाववाली शीलवती विदुषी थी। वह नित्य श्रावक के षट्कर्मों को करते हुए अपना जीवन व्यतीत करती थी।

सिंहसेन राजा का जीव, जो हाथी की पर्याय से मरकर स्वर्ग गया था, वही सुरावर्त राजा और यशोधरा रानी का पुत्र रश्मिवेग हुआ।

❖ ❖❖

कुछ समय बाद महाराज सुरावर्त तो राज्यभार रश्मिवेग को सौंपकर दिगम्बरी दीक्षा धारण कर आत्मसाधना करने लगे। धर्मात्मा रश्मिवेग न्यायपूर्वक राज्यकार्य चलाने लगा।

एक दिन की बात है कि धर्मात्मा रश्मिवेग, सिद्धकूट जिनालय की वन्दना के लिये गया था, वहाँ उसने एक हरिचन्द्र नाम के मुनिराज को देखा, उनसे धर्मोपदेश सुना। धर्मोपदेश का उसके चित्त पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। उसने संसार, शरीर, भोगादि से विरक्त हो संसार से अत्यन्त उदासीन हो उसी समय जिनदीक्षा ग्रहण कर ली।

जब वे रश्मिवेग महामुनि एक पर्वत की गुफा में कायोत्सर्ग धारण किये हुए थे कि एक भयानक अजगर ने, जो कि श्रीभूति का जीव सर्प पर्याय से मरकर चौथे नरक गया था और वहाँ से आकर यहाँ अजगर हुआ था, उन्हें काट खाया। मुनिराज तब भी ध्यान में निश्चल खड़े रहे, जरा भी विचलित नहीं हुए। अन्त में मृत्यु प्राप्त कर समाधिमरण के प्रभाव

से वे कापिष्ठस्वर्ग में जाकर आदित्यप्रभ नामक महर्द्धिक देव हुए, जो कि सदा जिनभगवान के चरणकमलों की भक्ति में लीन रहते थे और वह अजगर मरकर पाप के उदय से फिर चौथे नरक गया। वहाँ नारकियों ने उसे कभी तलवार से काटा तो कभी करौती से चीरा; कभी उसे अग्नि में जलाया तो कभी घानी में पेला; कभी अतिशय गरम तेल की कढ़ाई में डाला तो कभी लोहे के गरम खम्भों से आलिङ्गन कराया। तात्पर्य यह है कि नरक में उसे घोर दुःख भोगने पड़े।

(अन्तिम पूर्वभव : वज्रायुधकुमार)

पूर्वजन्म के पुण्य से सिंहसेन राजा का जीव स्वर्ग से आकर चक्रपुर नगर के राजा चक्रायुध और उनकी महारानी चित्रादेवी के यहाँ वज्रायुध नाम का पुत्र हुआ। जिनधर्म पर उसकी बड़ी श्रद्धा थी। श्रीभूति का जीव वन में भील हुआ।

❖ ❖❖

जब वह राज्य करने को समर्थ हो गया, तब महाराज चक्रायुध ने उसे राज्य का भार सौंपकर जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। वज्रायुध, न्याय-नीतिपूर्वक सुख से राज्य का पालन करने लगे। उन्होंने बहुत दिनों तक राज्यसुख भोगा। पश्चात् एक दिन किसी कारण से उन्हें भी वैराग्य हो गया। वे अपने पिता आचार्य चक्रायुध के समीप दीक्षा लेकर साधु बन गये। वज्रायुध मुनि एक दिन पियंगु नामक पर्वत पर कायोत्सर्ग धारण कर रहे थे; इतने में एक दुष्ट भील ने, जो कि सर्प का जीव चौथे नरक गया था और वहाँ से अब यही भील हुआ, उन्हें बाण से मार दिया। मुनिराज तो समभावों से प्राण त्याग कर सर्वार्थसिद्धि गये और वह भील रौद्रभाव से मरकर सातवें नरक गया।

(अन्तिम भव : संजयन्तकुमार)

सर्वार्थसिद्धि से आकर वज्रायुध का जीव तो संजयन्त हुआ, जो संसार

में प्रसिद्ध है और पूर्णचन्द्र का जीव उनका छोटा भाई जयन्त हुआ। वे दोनों भाई छोटी ही अवस्था में कामभोगों से विरक्त होकर पिता के साथ मुनि हो गये और वह भील का जीव सातवें नरक से निकल कर अनेक कुगतियों में भटका। उनमें उसने बहुत कष्ट सहा। अन्त में वह मरकर ऐरावत क्षेत्रान्तर्गत भूतरमण नामक वन में बहने वाली वेगवती नाम की नदी के किनारे पर गोशृङ्गतापस की शंखिनी नाम की स्त्री के हरिणशृङ्ग नामक पुत्र हुआ। वही पञ्चाग्नि तप, तपकर विद्युतद्दंष्ट्र विद्याधर हुआ है, जिसने कि संजयन्त मुनि पर पूर्वजन्म के बैर से घोर उपसर्ग किया और उनके छोटे भाई जयन्त मुनि, निदान करके जो धरणेन्द्र हुए, वे तुम हो।

संजयन्त मुनि पर पापी विद्युद्दंष्ट्र ने घोर उपसर्ग किया, तब भी वे पवित्रात्मा रञ्चमात्र विचलित नहीं हुए और सुमेरु के समान निश्चल रहकर उन्होंने सब उपसर्ग-परीषहों को सहा और सम्यक्तप का उद्योत कर अन्त में मोक्ष प्राप्त किया। वहाँ उनके अनन्त ज्ञानादि स्वाभाविक गुण प्रगट हुए। अब वे अनन्तकाल तक मोक्ष में ही रहेंगे, संसार में कभी नहीं आवेंगे।

दिवाकर देव ने कहा - 'नागेन्द्रराज ! यह संसार की स्थिति है। इसे देखकर इस बेचारे पर तुम्हें क्रोध करना उचित नहीं है। इसे दया करके छोड़ दीजिये।'

यह सुनकर धरणेन्द्र बोला - 'मैं आपके कहने से इसे छोड़ देता हूँ परन्तु मनुष्यपर्याय में इसे कभी विद्या की सिद्धि न हो।' इसके बाद धरणेन्द्र अपने भाई संजयन्त मुनि के मृतशरीर की बड़ी भक्ति के साथ पूजा कर अपने स्थान पर चला गया।

इसप्रकार श्रीसंजयन्त मुनि ने उपसर्गों पर विजय प्राप्तकर, अविनाशी मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त किया। ❖

5 कार्तिकेय का जन्म, वैराग्य, उपसर्ग और समाधि

कार्तिकपुर के राजा का नाम अग्निदत्त था। उसकी पत्नी का नाम वीरवती था, दोनों के कृतिका नाम की एक गुणवान, रूपवान पुत्री थी। एक बार कृतिका ने अष्टाह्निका महापर्व में आठ दिन का व्रत धारण किया। अन्तिम दिन वह भगवान की पूजा में लगी रही। जब पूजा समाप्त हुई, तब वह प्रसन्नता पूर्वक अपने पिता के समीप आयी। पुत्री की अनुपम सुन्दरता देखकर उसका पिता अग्निदत्त कामातुर हो गया। राजा अग्निदत्त ने कुछ अन्य धर्मी तथा जैन साधुओं को बुलाकर पूछा – 'हे नरश्रेष्ठ ! मेरे घर में उत्पन्न हुए रत्न का उपभोग मैं कर सकता हूँ या अन्य कोई?' सभी ने एक ही स्वर में कहा –

'राजन् ! उस रत्न के स्वामी आप हो सकते हो' किन्तु विशिष्ट प्रज्ञा के धनी जैन साधुओं[1] ने विचार करके कहा – राजन् ! तुम्हारे घर में उत्पन्न रत्न के स्वामी तो तुम हो सकते हो परन्तु वह कन्यारत्न नहीं होना चाहिए, तुम कन्यारत्न के स्वामी कदापि नहीं हो सकते।'

राजा कामी तो था ही, उसने अपने अभिप्राय के प्रतिकूल उत्तर पाकर, क्रोधित होकर जैन मुनियों को देश से बाहर निकाल दिया। अरे.... रे ! इस विषयाभिलाषा को धिक्कार है ! जहाँ एक पिता ही अपनी पुत्री को कामवासना की दृष्टि से देखता है, रे संसार !! तत्पश्चात् राजा अग्निदत्त ने अपनी ही कन्या कृतिका से विवाह कर लिया। सत्य

---

1. प्रथम तो वीतरागी दिगम्बर मुनिराजों को ऐसा भाव ही नहीं आता, फिर भी कदाचित् ऐसा प्रसंग बन जावे तब या तो वे मौन ही रहते हैं या फिर आगमानुकूल सत्य ही कहते हैं, भले ही उसका प्रतिफल कुछ भी हो वे गलत बात का समर्थन कभी नहीं करते। – सम्पादक

है - **कामान्ध मनुष्यों में धर्म, बुद्धि, नीति, सदाचार को स्थान कहाँ ?**

कुछ समय बाद कृतिका के गर्भ से एक पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुए। पुत्र का नाम कार्तिकेय और पुत्री का नाम वीरमती रखा गया। वीरमती अत्यन्त सुन्दर थी। उसका विवाह राजा कौंच के साथ सम्पन्न हुआ। वह रोहड़नगर का अधिपति था। वीरमती वहाँ जाकर सुखपूर्वक रहने लगी। तब तक कार्तिकेय भी चौदह वर्ष का किशोर हो गया था।

एक दिन कार्तिकेय अन्य राजकुमारों के साथ खेल रहा था। उन राजकुमारों ने नवीन वस्त्राभूषण पहने हुए थे। जब कार्तिकेय ने पूछा तो उसे पता चला कि ये वस्त्राभूषण उनके नाना के यहाँ से आये हैं। यह सुनकर कार्तिकेय को दुःख हुआ। उसने घर जाकर अपनी माँ से पूछा - 'हे माँ ! मेरे साथियों के लिए तो उनके नाना-मामा सुन्दर वस्त्र और आभूषण भेजते हैं, तो मेरे नाना-मामा मेरे लिए वस्त्राभूषण क्यों नहीं भेजते?'

अपने प्रिय पुत्र के मुख से ऐसी बात सुनकर कृतिका का हृदय दुःखी हो गया और उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। वह इस कोमल बालक को क्या कहकर सन्तोष दे - यह उसकी समझ में नहीं आया, अतः उसने हारकर रोते-रोते सत्य घटना कह सुनाई। उसने कहा - 'बेटा ! इस घोर पाप की बात मैं तुझसे किस प्रकार कहूँ? कहते हुए भी मेरे हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं।

हे पुत्र ! तेरे जन्म सम्बन्धी एक असम्भव घटना है। जो मेरे पिता हैं, वे ही तेरे भी पिता हैं। मेरे पिता ने कामातुर होकर बलजोरी से मेरे साथ विवाह कर लिया। उन्होंने मेरे पवित्र जीवन में कलंक लगा दिया। तू उसका ही फल है।'

अपनी माता के मुख से यह बात सुनकर कार्तिकेय सुन्न हो गया।

लज्जा और ग्लानि से उसका कोमल हृदय क्षुभित हो उठा.... परन्तु यह तो बीती हुई घटना थी, जो अब अपरिवर्तनीय थी।

खिन्न हृदय कार्तिकेय ने माँ से पूछा - 'माँ ! ऐसा अनर्थ करते हुए मेरे पिता का किसी ने विरोध नहीं किया? क्या सबकी आँखें बन्द थी ?'

माँ ने कहा - 'बेटा ! जैन मुनियों ने तो इसका पूरा विरोध किया। परन्तु मेरे पिता ने उन्हें देश से बाहर निकलवा दिया। अन्य ने इसी भय से विरोध नहीं किया।

कार्तिकेय फिर पूछने लगा - 'माँ ! वे गुणवान जैन महामुनि कैसे होते हैं?'

माँ ने कहा - 'बेटा ! वे शान्त चित्त होते हैं, किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं करते; कोई गाली दे तो भी उन्हें क्रोध नहीं आता। बेटा, वे महान पण्डित होते हैं, उनके पास धन-सम्पत्ति तो क्या? वे एक कोड़ी भी नहीं रखते और उनके पास वस्त्र का एक डोरा भी नहीं होता। चाहे सर्दी गर्मी या वर्षा हो, वे हमेशा एक समान रहते हैं। उन्मुक्त आकाश ही उनका वस्त्र होता है। वे नग्न दिगम्बर होते हैं। स्वप्न में भी कभी किसी को दुःख नहीं देते। वे जीव-दया के लिए हमेशा मोरपिच्छी रखते हैं, जिससे बैठने के लिए जगह जीवरहित करते हैं। एक लकड़ी का कमण्डलु, जिसमें शौचादि के लिए प्रासुक जल रखते हैं। यद्यपि वे भिक्षा (आहार) के लिए श्रावक के घर जाते हैं परन्तु माँगते नहीं हैं। बल्कि अटपटी प्रतिज्ञा लेकर आते हैं और अभिग्रह पूरा होने पर ही आहार लेते हैं अन्यथा वापस तपोवन में आ जाते हैं। कभी-कभी 15-15 दिन के उपवास कर लेते हैं।

बेटा ! मैं उनके आचार-विचार सम्बन्धी बातें क्या कहूँ? तू समझ ले कि संसार के समस्त साधुओं में ये साधु ही श्रेष्ठ व सच्चे होते हैं।'

अपनी माता द्वारा जैन साधुओं की प्रशंसा सुनकर कार्तिकेय को उनके प्रति अपार श्रद्धा हो गयी। अपने पिता के दुष्कृत्य को जानकर उसे वैराग्य तो पहले ही हो गया था, अब माता का उपदेश सुनकर वह अधिक अटल हो गया। वह समस्त मोह ममता का परित्याग करके उसी समय घर से निकल गया और मुनियों के स्थान तपोवन में जा पहुँचा। वहाँ मुनियों का संघ देखकर उसे अपार प्रसन्नता हुई और उसने मुनियों को प्रणाम करते हुए दीक्षा के लिए प्रार्थना की। संघ के आचार्य ने उसे दीक्षा देकर मुनि बना दिया। थोड़े ही दिनों में तो कार्तिकेय मुनि, विद्याभ्यास करके महाविद्वान हो गये।

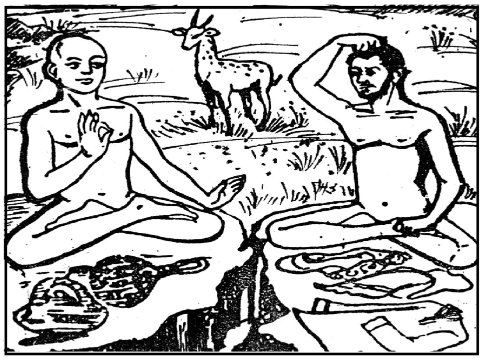

कार्तिकेय की माता ने मुनियों की प्रशंसा तो की थी परन्तु उसे यह पता नहीं था कि उसके पुत्र पर इसका ऐसा असर होगा और वह भी दीक्षा ले लेगा। जब उसे ज्ञात हुआ कि कार्तिकेय मुनि हो गया है तो उसे बहुत दुःख हुआ। वह कार्तिकेय के पास जाकर बहुत रोई, परन्तु वह उन्हें डिगा नहीं सकी। पुत्र के वियोग से उसका स्वास्थ्य खराब होने लगा और अन्त में पुत्र-वियोग से उसका मरण हो गया। वह पुत्र के वियोग में आर्त्तध्यान से मरकर व्यन्तर देवी हुई।

एकबार विहार करते हुए कार्तिकेय मुनि रोहड़नगर आ पहुँचे। यहाँ उनकी बहन का विवाह हुआ था। ज्येष्ठ का महिना था, अत्यन्त तीव्र गर्मी पड़ रही थी। अमावस्या के दिन कार्तिकेय मुनि, आहारचर्या के

लिए नगर में गये। वे राजमहल के नीचे से जा रहे थे कि महल में बैठी वीरमती की नजर कार्तिकेय मुनि पर जा पड़ी। वह दौड़कर भाई के पास आयी और अनुरागवश उनके चरणों में गिर पड़ी। जब राजा कौंच ने देखा कि रानी एक नङ्गे भिखारी के चरणों में पड़ी है तो वह महाक्रोधित हुआ। वह आकर मुनि को मारने के लिए उन पर प्रहार करने लगा; जिससे मुनि मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

अरे रे ! पापी-मिथ्यात्वी तथा जैनधर्म का विरोधी जीव क्या नीच कर्म नहीं करता ? कार्तिकेय को मूर्च्छित अवस्था में देखकर उनकी माँ, जो इस जन्म में व्यन्तरी हुई है, वह एक मोरनी का रूप धारण करके आयी और उसने अत्यन्त यत्नपूर्वक कार्तिकेय मुनि को उठाकर शीतलनाथ भगवान के मन्दिर में छोड़ दिया। मुनिराज की अवस्था खराब हो गयी थी। सचेत होने के बाद उन्होंने समाधि ले ली और वे इस नश्वर शरीर को त्यागकर स्वर्गधाम पधारे। ❖

प्रतिकूलता में भी धैर्य और शांति

आर्यपुत्र के सामने जैसे मैं सबकुछ भूल गई। कुछ न कह सकी। मन का ज्वालामुखी फूट पड़ना चाहता था पर उनकी सहज सरलता के छींटों से शांत हो गया। (व्यंगात्मक हँसी हँसकर) और मेरी रुचि के प्रतिकूल मुझे विरागिन समझ बैठे। ...वाह रे अद्भुत पुरुष ! न दरश, न परस। **मैंने कहा निर्मम हो। सहज ही बोल उठे प्रयास कर रहा हूँ। उनके सारल्य पर तन-मन न्यौछावर है। असीम अनुपम है उनकी निश्छलता।** अब सात्विक जीवन ही मेरा इष्ट है। मैं उनकी अनुगामिनी बनूँगी। अपनी आकांक्षाओं की होली जलाकर उनकी इच्छा की दासी बनूँगी। यही नारी धर्म है। अपने मन को इसका अभ्यस्त बनाऊँगी।

....भाग्य ! निष्ठुर ! तू कहाँ हँस रहा था मुझ पर। वैभव के विशालागार में बैठाकर भी उससे अछूता रहने को विवश कर दिया। विविध पकवानों से भरी थाली परोसकर भी मुझ क्षुधित के खाने पर प्रतिबन्ध लग गया।

– जै.क.संग्रह भाग २, पृष्ठ-१२८-१२९

6 राजा दंडक की कथा
(जटायु के पूर्वभव पर आधारित)

जिस समय श्रीराम अपने भाई लक्ष्मण और पत्नि सीता के साथ 14 वर्ष के वनवास प्रवास को गये थे, तब दण्डक वन में पहुँचने पर सीता ने वन के अनेक मीठे पके फलों से और वन के धान्य से सुगंधित आहार तैयार किया। भोजन के समय राम-लक्ष्मण दोनों भाई मुनिराज के आगमन की अभिलाषा से बाहर पड़गाहन करने के लिये खड़े हो गये। योगानुयोग से उस समय दो चारणमुनि पधारे जिनके नाम थे सुगुप्ति और गुप्ति । उनका शरीर ज्योतिपटल से संयुक्त था वे मुनि मति, श्रुत, अवधि तीन ज्ञान के धारी थे। किसी भी वस्तु की अभिलाषा से रहित निर्मल मन वाले मासोपवासी अत्यन्त धीर-वीर शुभ चेष्टा के धारक, भक्तों को आनन्द प्रदाता, महाव्रत के धारक परम तपस्वी, शास्त्रोक्त आचार संयुक्त ऐसे वे मुनिराज आहार के लिये पधारे।

सीता ने दूर से उनको देखा। अत्यन्त हर्ष से पुलकित आँखों और रोमांचित वदन वह श्रीराम से कहने लगी कि हे नाथ ! हे नरश्रेष्ठ! देखो, देखो ! तप के कारण दुर्बल शरीरवाले कल्याणरूप दिगम्बर मुनियुगल पधार रहे हैं। तब राम ने कहा कि हे प्रिये हे पंडिते! धन्य है तुम्हारे भाग्य को ! तुमने निर्ग्रन्थ युगल को देखा। जिनके दर्शन से जनम-जनम के पाप मिटते हैं और भक्तिवंत पुरुष का परम कल्याण होता है।

जब राम ने ऐसा कहा तो सीता कहने लगी वे आये! वे आये! उसी समय दोनों मुनिराजों पर राम की नजर पड़ी। जो जीवदया के पालक ईर्यासमिति सहित समाधान रूप मन वाले थे। फिर श्री राम

ने सीता सहित उनके सन्मुख जाकर नमस्कार करके अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति सहित मुनियों का पड़गाहन किया और नवधा भक्ति पूर्वक आहारदान दिया। वन की गाय और भैसों का दूध, पर्वत की द्राक्ष नानाप्रकार के वन धान्य, सुन्दर घी युक्त मिष्ठान्न इत्यादि से विधि पूर्वक मुनियों का पारणा कराया। वे मुनि नवैद्य के स्वाद की लोलुपता रहित निरंतराय आहार करने लगे। जब राम ने सीता सहित भक्ति से आहारदान किया तब पंचाश्चर्य हुए।

जिस समय उन्होंने मुनियों को आहारदान दिया उस समय वन में एक गिद्ध पक्षी वृक्ष पर बैठा था। अतिशय संयुक्त मुनियों को देखकर उसको अपने पूर्वभव का ज्ञान हुआ कि कुछ भव पूर्व मैं मनुष्य था। मैंने प्रमाद और अविवेक से अपना जन्म व्यर्थ गंवाया। मेरे महापापकर्म के स्मरण मात्र से मैं अन्तर में जलता हूँ।

इसप्रकार पूर्वभव के स्मरण के कारण पहले तो उसको बहुत शोक हुआ। फिर साधु के दर्शन से तत्काल अत्यन्त हर्षित होकर अपने दोनों पंख फैलाकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से अत्यन्त विनयपूर्वक वृक्ष के नीचे गिर पड़ा। पक्षी बहुत बड़ा होने से उसके पड़ने की आवाज से सीता का चित्त व्याकुल हो गया। देखो, गिद्ध पक्षी मुनियों के चरणों में कहाँ से आकर पड़ा। उसने कठोर आवाज करके बहुत रोका परन्तु वह पक्षी मुनियों के चरण के प्रक्षालन में आकर पड़ा। चरणोदक के प्रभाव से क्षणभर में उसका शरीर रत्नों की राशि के समान नाना प्रकार के तेज से मंडित हो गया। पैर तो सुवर्ण की प्रभा धरने लगे, दोनों पंख वैडूर्यमणि के समान हो गये। शरीर नानाप्रकार के रत्नों की छवि बन गया। चोंच माणिक के समान लाल हो गई। फिर वह पक्षी अत्यन्त हर्षित हुआ और मधुर आवाज से नृत्य करने के लिये तैयार हो गया। जिसकी आवाज देवों की दुदुंभी

समान है वह नेत्रों से आनन्दाश्रु बहाता हुआ शोभित होने लगा। जैसे मोर मेघ के आगमन से नृत्य करते हैं, उसी तरह वह मुनियों के दर्शन कर उनके आगे नृत्य करने लगा।

महामुनि विधिपूर्वक पारणा करके वैडूर्यमणि के समान शिला पर विराजमान हो गये। पद्मरागमणि के समान हैं नेत्र जिसके ऐसा वह पक्षी पंखों को संकुचित कर मुनियों के चरणों के समीप आकर बैठ गया। तब श्रीराम खिले हुए कमल के समान नेत्रों से पक्षी को प्रकाशरूप देखकर स्वयं ही अत्यन्त विस्मित हुए। उन्होंने साधुओं के चरणों में नमस्कार करके पूछा। कैसे हैं साधु ? अट्ठाईस मूलगुण और चौरासी लाख उत्तरगुण जिनके आभूषण हैं, ऐसे मुनिराज से बारम्बार पक्षी की तरफ देखकर राम ने पूछा हे भगवन ! यह पक्षी पूर्व की अवस्था में अत्यन्त कुरूप था वह क्षणभर में सुवर्ण और रत्नों की मूर्ति बन गया। यह अशुद्धरूप और माँस का भक्षण करने वाला दुष्ट गिद्ध पक्षी आपके चरणों के समीप बैठकर अत्यन्त शान्त हो गया इसका क्या कारण है?

(1)

तब सुगुप्ति नामक मुनि ने कहा-

हे राम ! पहले इस जगह पर एक सुन्दर दण्डक नाम का देश था। वहाँ कुर्णकुंडल नामक अति मनोहर नगर में इस पक्षी का जीव दंडक नाम का राजा था। वह प्रतापी प्रचण्ड पराक्रमी जिसने शत्रुरूपी कांटों को भंग कर दिया था ऐसा महामानी विशाल सेना का स्वामी था। उस मूढ़ ने मिथ्या श्रद्धारूप रहकर मिथ्याशास्त्रों का सेवन किया। जैसे कोई घी की प्राप्ति के लिये पानी को बिलोवे ऐसा वह प्रयत्न था। इसकी स्त्री दण्डी जाति के संन्यासी की भक्त थी। रानी को संन्यासी के प्रति बहुत अनुराग था। उसके संग से राजा भी उसी पथ का अनुयायी हो गया। स्त्री के वश हुआ पुरुष क्या-क्या नहीं करता?

एक दिन वह नगर के बाहर निकला। तब वन में कायोत्सर्ग करके ध्यान में बैठे हुए एक मुनि को देखा। तब उस निर्दयी राजा ने मुनि के गले में एक मरा हुआ सांप डाल दिया। दंडक राजा पाषाण के समान कठोर हृदय वाला था। उन मुनि ने ध्यान धरकर मौन रहकर ऐसी प्रतिज्ञा की कि जबतक मेरे गले में से सर्प दूर नहीं होगा तब तक मैं हलन-चलन रहित योगरूप ही रहूँगा। इसप्रकार कितने ही दिनों के बाद राजा उसी मार्ग से निकला उस समय किसी भले मनुष्य ने सर्प को दूर किया और वह मुनि के पास बैठा था। राजा ने उससे पूछा कि मुनि के गले में से सर्प किसने निकाला? तब उस मनुष्य ने उत्तर दिया कि हे नरेन्द्र ! किसी नरकगामी ने ध्यानारुढ़ मुनि के गले में मरा हुआ सर्प डाला था। उस सर्प के संयोग से साधु के शरीर में अनेक छिद्र हो गये थे, इन्होंने तो कोई उपाय किया नहीं। आज मैंने उस सर्प को दूर किया है। तब राजा ने मुनि को शान्तस्वरूप कषायरहित जानकर प्रणाम किया। तभी से वह दिगम्बर जैन मुनिभक्ति का अनुरागी हुआ।

जब रानी ने दंडियों के मुख से यह वृतान्त सुना कि राजा जैन धर्म का अनुरागी हो गया है तब उस पापिन ने छलपूर्वक मुनिराज को मारने का उपाय किया। जो दुष्ट जीव होता है वह अपने जीवन का प्रयत्न छोड़कर अन्य का अहित करता है। उस पापिन ने अपने गुरुओं से कहा कि तुम निर्ग्रन्थ मुनि का रूप धारण करके मेरे महल में आओ और विकार चेष्टा करो। उन्होंने उसी प्रकार किया।

राजा यह वृतान्त जानकर मुनियों के प्रति क्रोधित हो गया और उसके मंत्री आदि दुष्ट मिथ्यादृष्टि जो सदा मुनियों की निन्दा ही करते थे, उन्होंने राजा को भ्रमित किया। तब उस पापी राजा ने मुनियों को घाणी में पेलने का आदेश देकर अनंत दुखों का स्थान जो नरक,

अपने लिए उसके द्वार खोल लिए। उसने आचार्य सहित समस्त मुनियों को घाणी में पिलवा दिया।

एक मुनिराज बाहर गये थे और वापस आ रहे थे, उन्हें देखकर एक विवेकवान दयालु व्यक्ति ने कहा कि पापी राजा ने अनेक मुनियों को घाणी में पिलवा दिया है, अतः आप वहाँ मत जाओ। आपका शरीर धर्म का साधन है; अतःअपने शरीर की रक्षा करो।

यह समाचार सुनकर मुनिसंघ के शोक से जिनको दुःखरूपी पहाड़ का आघात लगा है - ऐसे वे मुनि थोड़ी देर तक तो वज्र के स्तम्भ के समान निश्चल हो गये। फिर असह्य दुःख से क्लेश को प्राप्त हुए। फिर उन मुनिरूप पर्वत की समभावरूप गुफा से क्रोधरूप केसरी सिंह निकला, लाल नेत्र हुए, तप्तायमान मुनि के सम्पूर्ण शरीर में से पसीनें की बूंदें फूट निकली, फिर कालाग्नि निकली। लोग हाहाकार करते हुए मरण को प्राप्त हुए। जैसे बांस का वन जलता है; वैसे ही सारा देश भस्म हो गया। न राजा बचा, न अन्तःपुर, न ग्राम, न पर्वत, न नदी, न वन, न कोई प्राणी। देश में कोई नहीं बचा।

महान ज्ञान-वैराग्य के योग से बहुत समय पश्चात् मुनि ने जो समभावरूप धन उपार्जित किया था वह तत्काल क्रोधरूप लुटेरे ने जला दिया। दंडक देश का दंडक राजा पाप के कारण स्वयं तो नष्ट हुआ ही पूरा देश भी नष्ट हो गया। अत: अब यह दंडक वन कहलाता है।

कुछ समय तक तो यहाँ घास भी नहीं उगा। बहुत समय के बाद यहाँ मुनियों का विहार हुआ उसके प्रभाव से वृक्षादि हुए। यह वन देवों को भी भय उपजाने वाला है, विद्याधरों की तो बात ही क्या? सिंह, बाघ, अष्टापद आदि अनेक जीवों से भरा और जाति-जाति के भयंकर पक्षियों की आवाज से गूंजता था यह दण्डक वन।

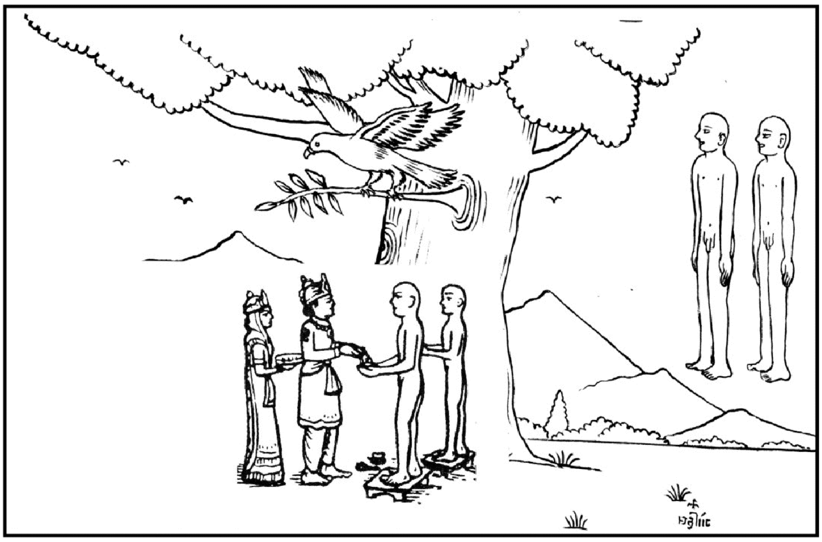

वह राजा दंडक प्रबल शक्तिशाली था। वह मुनिहिंसा के महापाप से अनेक भवों तक नरक तिर्यंच योनियों में भटककर यह गिद्ध हुआ है। अब इसके पापकर्म की निवृत्ति हुई है। हमको देखकर इसे पूर्व भव का स्मरण हुआ है और ऐसा जानकर यह संसार, शरीर, भोगों से विरक्त हुआ है।

इस पक्षी को अपने पूर्वभव की चेष्टा याद आ जाने से यह कांप रहा है। पक्षी के प्रति दया करते हुए मुनिराज कहने लगे कि **हे भव्य! अब तू भय मत कर। जिस समय जो होना होता है वह होता है। तू रुदन किसलिये करता है? होनहार को मिटाने में कोई समर्थ नहीं है। अब तू समताभाव धारण करके सुखी हो, पश्चाताप छोड़।** देख कहाँ यह वन और कहाँ सीता के साथ श्रीराम का आना और कहाँ हमारी वनचर्या का अभिग्रह कि वन में श्रावक द्वारा आहार मिलेगा तो लेंगे और कहाँ तेरा हमको देखकर प्रतिबुद्ध होना। कर्मों की गति विचित्र है। कर्मों की विचित्रता से जगत की विचित्रता है।

मुनिराज ने पक्षी को वैराग्य के लिये संसार की कथा सुनाई। उसे सुनकर वह गिद्ध पक्षी संसार दुख से भयभीत हुआ और धर्मग्रहण की वांछा से बारम्बार आवाज करने लगा। तब श्रीगुरु ने कहा कि हे भद्र ! तू भय मत कर, श्रावक के व्रत ले, जिससे पुनः दुख की परम्परा प्राप्त न हो। अब तू शान्तभाव धारण कर।

इसप्रकार जब मुनियों ने आज्ञा की तब पक्षी ने बारम्बार नमस्कार करके मुनि द्वारा श्रावक के व्रत धारण किये। सीता ने जाना कि यह उत्तम श्रावक हो गया है- इस कारण उसने आनन्दित होकर अपने हाथ से उस पक्षी से बहुत प्रेम किया। उसको विश्वास उत्पन्न करके दोनों मुनियों ने कहा कि यह पक्षी अब शान्त चित्तवाला श्रावक बन गया है, अब यह कहाँ जायेगा? गहनवन में अनेक क्रूर जीव हैं। अतः तुम इस सम्यग्दृष्टि श्रावक पक्षी की सदा रक्षा करना।

गुरु के यह वचन सुनकर उसको पालने की इच्छा वाली सीता ने उसके प्रति अनुग्रह करके उसे रखा। राम-लक्ष्मण भी उसको जिनधर्मी जानकर अत्यन्त अनुराग करने लगे। उसकी जटा हेम और रत्नों की शोभा से शोभित थी अत: राम ने उसका नाम 'जटायु' रखा। जब राम, सीता, लक्ष्मण जिनेन्द्र भक्ति करते तब जटायु हर्षित होकर नृत्य करता था।

इसप्रकार दंडक राजा मुनियों की हिंसा के महापाप से नरक आदि के महा दुःख भोगकर मुनियों के समागम से गिद्ध पक्षी की अवस्था में धर्म प्राप्त करके राम-सीता के संग आत्मसाधना में आगे बढ़ा।

अन्य जीवों का जो दृष्टांत है वह अपने शान्तभाव की उत्पत्ति का कारण है। अत: हमें भी इस दृष्टान्त से शिक्षा लेनी चाहिए कि अपने विवेक को सदा जागृत रखें, आँख बंद कर किसी पर भी विश्वास करके कोई खोटा कार्य न करें। - महापुराण से साभार

7 देवरति राजा और रक्ता रानी
(विषय लंपटी की दुर्दशा)

केवलज्ञान जिनका नेत्र है, ऐसे जगत प्रसिद्ध जिन भगवान को नमस्कार करके अयोध्या के राजा देवरति का उपाख्यान (जीवन वृतान्त) लिखा जाता है।

अयोध्या के राजा देवरति की रानी का नाम रक्ता था। वह बहुत ही सुन्दर थी। राजा विषय लंपटी होने से सदा रानी के पास ही बैठा रहता था। राज्यकाज में कुछ भी ध्यान नहीं देता था। **धर्म, अर्थ और मोक्ष पुरुषार्थ को छोड़कर विषय वासना का दास बने रहने से दुर्गति होती है। देवरति की भी ऐसी ही दशा हुई।**

मंत्रियों को उसकी उदासीनता बहुत ही खराब लगने लगी। उन्होंने राजा से राज्य संभालने की प्रार्थना भी की, परन्तु फल कुछ भी नहीं निकला। इस कारण देवरति के पुत्र जयसेन को राजा नियुक्त करके देवरति को रानी सहित देश से निष्कासित कर दिया। **पंचेन्द्रिय के विषयों में आसक्त मनुष्य का कौनसा गुण नष्ट नहीं होता विद्वता, मानवता, सज्जनता, कुलीनता, सत्यनिष्ठा आदि सभी गुण नष्ट हो जाते हैं। विषयाषक्ति और गुणों का सदा ही वैर रहा है।**

ऐसी कामवासना को धिक्कार है कि जिससे मान–मर्यादा धूल में मिल जाती है और कष्ट भी सहन करना पड़ता है। राजा देवरति अयोध्या से निकलकर एक भयानक जंगल में आ गया। वहाँ रानी को तीव्र भूख लगी इसलिये रानी को यमुना के किनारे एक वृक्ष के नीचे बिठाकर राजा भोजन के लिये समीप के गांव में गया।

यमुना के किनारे एक सुन्दर बगीचा था। उसमें कोई अपंग मधुर

आवाज में गा रहा था। उसके गाने की मीठी आवाज रक्ता रानी के कान में पड़ी। रानी गाने वाले पर मोहित हो गई और वह लाज शर्म छोड़कर अपंग के पास गई और उसके पास अपनी काम वासना प्रगट की। यद्यपि वह कोई सुन्दर नहीं था। तथापि रानी उस पर मुग्ध हो गई। सत्य ही है, काम जात-पात नहीं देखता रानी की पाप वासना सुनकर अपंग घबरा गया और बोला कि मैं एक भिखारी हूँ और तुम राजरानी हो। यदि राजा अपने को एकसाथ देखेगा तो जीवित नहीं रहने देगा। तुम्हारे तेजस्वी और शूरवीर पति की याद आते ही मेरा शरीर कांप उठता है। अतः मुझको क्षमा करो। रानी ने उसको कहा कि तुम चिन्ता मत करो, मैं अभी राजा को मार दूंगी। अरे रे ! कुलटा क्या-क्या अनर्थ नहीं कर सकती?

इसीप्रकार अनादि से हम भी अपने चैतन्य राजा को छोड़कर उन पंचेन्द्रिय भोगों के पास जाकर सुखी होना चाहते हैं, जो स्वयं सुख से रहित हैं उस अपंग की तरह।

उसी समय राजा भोजन लेकर आ गया। उसको देखते ही रानी माया फैलाकर रोने लगी। राजा रानी को रोते हुए देखकर भोजन को एक तरफ रखकर रानी के पास गया और बोला कि हे प्रिये ! तुम क्यों रोती हो? क्या किसी ने तुम्हारा अपमान किया है? अकस्मात तुम्हारे रुदन से मेरा धीरज छूटा जा रहा है। अपने रोने का कारण शीघ्र ही मुझको बताओ। रानी एक लम्बी श्वांस लेकर बोली कि प्राणनाथ! आपके रहते कौन मुझको कष्ट दे सकता है; परन्तु मुझको इस बात का बड़ा दुख होता है कि आज तुम्हारी वर्षगांठ है और मेरे पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं है। मैं आज आपके जन्म का उत्सव किससे मनाऊँ।

रानी की प्रेम भरी बात सुनकर राजा का हृदय भर आया और आँख में से आंसू टपकने लगे। राजा ने रानी से प्यार भरे शब्दों में

कहा कि प्रिये ! उसके लिये क्या चिन्ता है? कभी वह दिन भी आ जायेगा जब तुम्हारी कामना पूर्ण होगी। तुम्हारे जैसी भाग्यशालिनी जिसकी प्रिया हो, जिसके लिये मैंने राज-पाट को तुच्छ समझा उसको ऐसी छोटी-छोटी बातों में क्या दुखी होना चाहिये? राजा को यह स्वप्न में भी पता नहीं था कि यह कुलटा निष्कपट प्रेम का बदला प्राण लेकर लेगी।

दैव की गति विचित्र है। राजा के ऐसे सच्चे प्रेम का पापिनी के पत्थर दिल पर जरा भी असर नहीं हुआ। रानी ऊपर से प्रेम दर्शाते हुए बोली– नाथ ! जो बात नहीं हो सकती उसकी चिन्ता करना व्यर्थ है, तो भी मैं अपने चित्त की शान्ति के लिये इस पवित्र पुष्पमाला से इस जन्मगांठ का उत्सव मनाऊँगी।

ऐसा कहकर रानी ने फूल गूंथने की डोरी से राजा को बांध दिया। राजा समझा कि रानी जन्मदिन की विधि पूर्ण कर रही है। अतः राजा ने एक भी शब्द नहीं बोला। राजा को अत्यन्त मजबूती से बांधकर रानी ने ईशारे से अपंग को बुलाया और उसकी सहायता से यमुना के किनारे ले जाकर राजा को नदी में फेंक दिया और फिर वह कुलटा अपंग के साथ अपनी पाप मनोवृत्ति पूर्ण करने लगी। इसप्रकार उसने नीचता और कुलटापन की सभी हदें पार कर दीं।

इसीप्रकार हम भी विषय-कषायों की पूर्ति हेतु परद्रव्यों को अपना मानकर अपने ही चैतन्य राजा को कर्मों से बाँध कर संसार समुद्र में फेंक देते हैं और फिर उसे पीठ देकर अनंत दुख झेलते रहते हैं उस रक्ता की तरह।

जब पुण्य का उदय होता है तो मनुष्य भयंकर दुःखों से भी बच जाता है। राजा देवरति के भी कोई ऐसा पुण्य उदय हुआ कि जिससे वह नदी से बच गया। वह नदी से निकलकर मंगलपुर शहर के समीप

पहुँचा। कितने ही दिनों तक चलते रहने के कारण वह थक गया था, इस कारण वह अपनी थकावट दूर करने के लिये एक छायादार वृक्ष के नीचे सो गया मानों कि जैनधर्म की छत्रछाया में ही सुख की नींद ले रहा हो।

मंगलपुर का राजा श्रीवर्धन निःसंतान था। उसी समय उसकी मृत्यु हो गई, इसलिये मंत्रियों ने विचार-विमर्श करके एक हाथी को जल से भरा हुआ कलश देकर छोड़ा कि यह हाथी जिसका अभिषेक करेगा, वही राजा बनेगा। **कर्म की लीला अपरम्पार है। कर्म राजा को रंक और भिखारी को राजा बना देता है। जब देवरति का समय प्रतिकूल था तब उसे रास्ते का भिखारी बना दिया और पुण्योदय होने पर उसको राजगद्दी पर बैठा दिया।**

देवरति वृक्ष के नीचे सो रहा था। उसी समय हाथी ने आकर उसका अभिषेक किया। उसे धूमधाम पूर्वक शहर में लाया गया और राज सिंहासन पर बिठाया। **पुण्य का उदय होने पर आपत्ति भी सुखरूप हो जाती है। इस कारण सुख की इच्छा करने वालों को सदा धर्म पर विश्वास रखकर सदा परिणामों में विशुद्धि पूर्वक पूजा-दान आदि शुभ कार्य करना चाहिये।**

देवरति फिर से राजा हो गया; परन्तु अब उसकी दशा पहले जैसी नहीं रही। वह स्वयं राजकाज सम्भालने लगा। जिन बुराइयों के कारण राज्य से भ्रष्ट हुआ था वह उनको अपने पास फटकने भी नहीं देता था। अब स्त्री नाम से भी उसको घृणा होने लगी। वह कुलकलंकी रक्ता के साथ सभी स्त्रियों को कुलकलंकी कहने लगा। इसमें उसका दोष भी क्या था। **दूध से जला हुआ मनुष्य छाछ को भी फूंक-फूंककर पीता है। वह दान देता था; लेकिन एक भी लूले लंगड़े को दान देना वह पाप समझता था।**

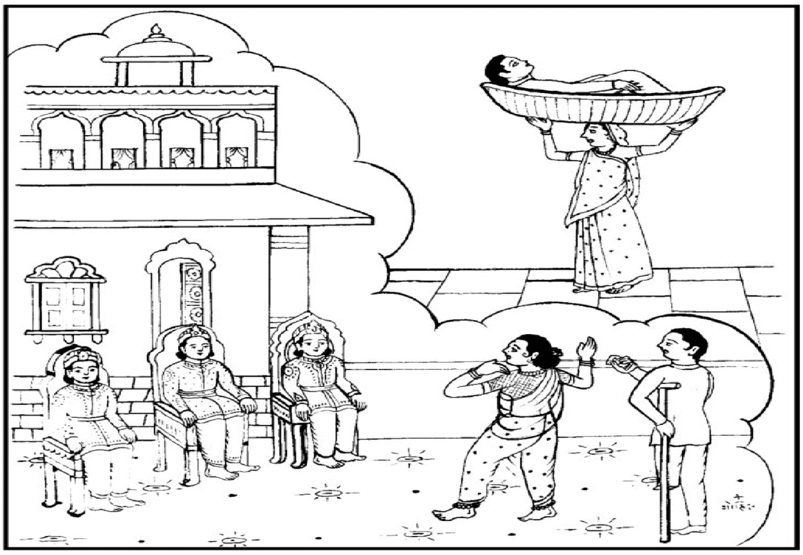

इधर रक्ता रानी ने कितने ही दिन अपंग के साथ रहकर उस विष फल का सेवन किया, जिसका फल नरकादि गति होता है। फिर अपंग को एक टोकरी में डालकर देश-देश घूमने लगी। वह जहाँ भी जाती अपने को एक महासती प्रसिद्ध करती और कहती कि माता-पिता ने मुझे जिसके हाथों सौंपा वही मेरा प्राणनाथ है। इस ठगाई में लोग बहुत धन दे देते थे। इसप्रकार भिक्षावृत्ति करते-करते एक दिन वह मंगलपुर पहुँच गई। वहाँ भी लोगों को उसके सतीत्व पर अत्यन्त श्रद्धा हो गई। सत्य है; स्त्रियों ने जब ब्रह्मा, विष्णु, महेश जैसे देवताओं को भी ठग लिया, तब उनके जाल में सामान्य मनुष्य ठगा जाये तो उसमें आश्चर्य ही क्या है?

एक दिन वे दोनों गाते-गाते राजमहल के सामने आये। द्वारपाल ने राजा से प्रार्थना की कि हे महाराज ! एक स्त्री अपने अपंग पति को टोकरे में लेकर खड़ी है और वे दोनों बहुत ही सुन्दर गीत गाते हैं। तथा आपके दर्शन करना चाहते हैं। यदि आपकी आज्ञा हो तो उनको अन्दर

आने दें और सभासदों ने भी उनको देखने की इच्छा जाहिर की है।

राजा ने अपने कक्ष के पट बंद कर उन दोनों को अन्दर आने की आज्ञा दी। रक्ता अपने शिर के ऊपर टोकरा लेकर अन्दर आई और उसने गीत गाया जिसे सुनकर सभी जन मुग्ध हो गये।

राजा ने आवाज सुनकर उस स्त्री (रक्ता) को पहचान लिया। परदा दूर करके कहा – अहा ! यह तो महासती है, इसका अतीत मैं अच्छी तरह जानता हूँ। तत्पश्चात् राजा ने अपनी हकीकत (आत्मकथा) सभा को सुनाई। सब लोग इस हकीकत को सुनकर आश्चर्य चकित हो गये और रक्ता को शहर से बाहर निकाल दिया गया। उसका चरित्र देखकर राजा देवरति को वैराग्य हो गया। उसने अयोध्या से अपने पुत्र जयसेन को बुलाकर इस राज्य का भार भी उसे ही सौंप दिया और स्वयं यमधर आचार्य के समीप दीक्षा लेकर तपश्चर्या करने लगा।

अहो ! जो भी संसार की सच्चाई को जान लेते हैं वे सभी इसीप्रकार पर का/संसार का राज्य छोड़कर अपना स्वराज्य/आत्मा का राज्य प्राप्त करने हेतु संसार शरीर भोगों को त्याग देते हैं राजा देवरति की तरह।

अन्त में राजा समाधि पूर्वक नश्वर शरीर त्यागकर स्वर्ग में ऋद्धिधारी देव हुआ।

जिसप्रकार देवरति राजा ने रक्ता के घृणित चरित्र को देखकर और सांसारिक सुख को क्षणिक व पराधीन समझकर वैराग्य को प्राप्त कर मुनिपद ग्रहण किया, उसीप्रकार हम सब भी इस संसार को दुख एवं दुख का कारण जानकर अपने आत्मकल्याण हेतु सम्यग्ज्ञान पूर्वक रत्नत्रय प्रकट करें और मोक्षमार्ग पर अग्रसर हों।

– आराधना कथाकोष से साभार

8 सही निर्णय
(सुखी होने का सही उपाय)

एक राजा के चार रानियाँ थीं, चारों रानियों के एक-एक पुत्र था। जब चारों राजकुमार बड़े हुए तब राजा को चिन्ता हुई कि किसका राज्याभिषेक किया जाये, सभी राजकुमार शारीरिक योग्यता एवं उम्र में लगभग समान थे। यद्यपि सभी राजकुमार आज्ञाकारी थे किन्तु फिर भी भविष्य में रानियों एवं राजकुमारों में राजगद्दी के विषय को लेकर परस्पर कोई कलह न हो जाये, यह सोच-सोच कर राजा बहुत चिन्तित रहता था। इसी चिन्ता से परेशान राजा ने चारों राजकुमारों को बुलाया एवं अपने साथ लेकर साधु महात्मा के पास पहुँचा, चारों रानियाँ भी साथ थीं। राजा ने साधु महात्मा को अपनी चिन्ता का कारण बताकर उसका समाधान चाहा।

राजा की चिन्ताजनक बात को सुनकर साधु ने राजा बनने योग्य राजकुमार का निर्णय करने के लिए, उन चारों राजकुमारों में से प्रत्येक से एक ही सवाल किया – **'अगर तुम्हें पता चले कि अपने राज्य में कोई अपराधी रहता है तो तुम क्या करोगे?'**

पहले राजकुमार ने उत्तर दिया– 'मैं देखूँगा कि मेरे पास दूसरा काम तो नहीं है? नहीं होगा तो फिर उस अपराधी के बारे में सोचूँगा।'

दूसरे राजकुमार ने कहा कि – 'उसे तुरन्त दण्ड दूँगा।'

तीसरे राजकुमार ने जबाब में कहा कि – 'मैं पूरी जाँच करूँगा और यदि वह दोषी पाया गया तो उसे दण्ड सुनाकर जेल भेज दूँगा।'

अन्तिम व चौथे राजकुमार ने साधु महाराज के प्रश्न के जबाब में कहा कि – 'मैं पहले यह देखूँगा कि यह दोष कहीं मुझमें तो नहीं ?

अगर है **तो पहले मैं अपने दोषों को त्यागूँगा, फिर उससे कहूँगा कि वह सुधरे, फिर भी वह नहीं सुधरा तो दण्ड दूँगा।'**

बस फिर क्या था ! राजा की चिन्ता दूर हो गई, राजा ने चौथे राजकुमार को राजा बना दिया गया।

इसीप्रकार हम भी सुखी होने के नाम पर कभी व्यवहार शुभ क्रियारूप धर्म पुरुषार्थ करते हैं, कभी पैसा कमाने रूप अर्थ पुरुषार्थ करते हैं, कभी भोग भोगने रूप काम पुरुषार्थ करते हैं; परन्तु इन सबको करके भी उन तीन राजकुमारों की भाँति सुखरूपी राज्य प्राप्त नहीं कर पाते। मात्र मोक्ष पुरुषार्थ करनेवाले ज्ञानी जीव ही उस चोथे राजकुमार की भाँति मोक्ष सुख, निराकुल सुख, सिद्धों का सुख साम्राज्य – राज्य प्राप्त करते हैं।

यदि हमें भी ऐसे सच्चे सुख का राज्य प्राप्त करना है, तो हमें भी अपना यथार्थ स्वरूप जाने बिना अपनी अज्ञानता से जिसे मोह अपना कहता है उसे अपना मानकर उसी के कार्य निवटाने में सुख का भ्रम नहीं रखना चाहिए।

बिना विचार किए, निर्णय नहीं होता और निर्णय हुए बिना यथार्थ वस्तु की प्राप्ति नहीं होती, अत: हमें कोई भी कार्य करने के पूर्व स्व-पर का यथार्थ निर्णय अवश्य करना चाहिए।

प्रथम तो हम विचार ही नहीं करते और करते भी हैं तो मात्र परद्रव्यों के बारे में ही करते हैं अर्थात् संयोग, निमित्त, कर्म के दोष देखकर ही सुखी होना चाहते हैं। जो हमें कभी भी सुख नहीं दे सकते।

अत: सबसे पहले हमें अपना दोष, जो अज्ञान अर्थात् मिथ्यात्व कषायरूप हमारी विपरीत मान्यता या कषाय परिणाम हैं, वास्तव में जो हमारे स्वभाव नहीं कर्म निमित्त से हुए औपाधिक भाव हैं जिन्हें हम अभी तक अपने स्वभाव मानकर बैठे हैं उन्हें अपना मानना छोड़ना चाहिए और अपने ज्ञानानंदस्वभाव को ही अपना मानना चाहिए तभी हम सुख का राज्य प्राप्त कर सकते हैं। **– महावीर बखेड़ी शास्त्री**

9 माँ : एक वह और एक मैं

(हमारी आराधना कैसी हो?)

''...तो यह है मेरी पूज्य माँ का स्वप्न''- सेनापति चाममुण्डराय ने बाहुबली-प्रतिमा के निर्माण की परिकल्पना देते हुए एक शिल्पी अरिष्टनेमि से कहा। शिल्पी ने सबकुछ तन्मयता से सुना और देखते-देखते उसकी आँखों के सामने एक रम्य कल्पना कौंध गई। एक भव्य मनोज्ञ सुविशाल प्रतिमा आ खड़ी हुई; किन्तु कला के साथ कांचन की लालसा भी उसके तन-मन में भभक उठी। वह बहुरंगी स्वप्नों में डूब गया।

सेनापति ने उसका पार्थिव स्वप्न तोड़ते हुए कहा - 'तो बताओ शिल्पी ! तुम मेरे इस कला-स्वप्न को कितनी अवधि में साकार कर सकोगे?'

शिल्पी अरिष्टनेमि अवाक् खड़े हैं। द्विविधा में कुछ बोल नहीं पा रहे हैं; किन्तु सेनापति कह रहे हैं- 'शिल्पी, सबकुछ जीवन्त हो; लगे कि जैसे पाषाण में किसी ने एक महाकाव्य का सृजन किया है।'

अरिष्टनेमि के मन में लालसाएँ बढ़ने लगीं। मौन तोड़ते हुए चामुण्डराय ने कहा - 'तो मान लिया जाए कि तुम्हारी कला मेरे इस कोमल-कठोर स्वप्न को नहीं झेल सकेगी ?'

'नहीं, सो नहीं है सेनापते ! बात दूसरी ही है। मैं सोचता हूँ क्या हम श्रमिकों को इस कार्य के निमित्त भरपूर पारिश्रमिक दे पायेंगे?' कलाकार ने सकुचाते हुए कहा। 'अवश्य'- सेनापति ने अपूर्व दृढ़ता के साथ कहा।

'तो सेनापते ! उस पाषाण को तो हम वक्षस्थल तक उठा लायेंगे; किन्तु उसके बाद जो प्रस्तर-खण्ड-कण गिरेंगे उनकी तोल का स्वर्ण

शिल्पियों को देना होगा।' - चामुण्डराय ने पुलकित मन से स्वीकृति प्रदान दी।

काम शुरू हुआ, पहली खेप की तोल का सोना लिए अरिष्टनेमि अपने गाँव पहुँचा है। माँ अपने लाड़ले की अगवानी के लिए आगे आयी है। उसे स्वर्ण नहीं बेटा चाहिए; किन्तु यह क्या ? जैसे ही शिल्पी ने माँ के चरण छुए और स्वर्ण का भार उठाये उसके दोनों हाथ निर्जीव पड़ गए हैं।

माँ ने इस घटना को तुरन्त समझ लिया, मातृत्व सारे संसार का एक जैसा होता है फिर वह चाहे चामुण्डराय की माँ का हो या अरिष्टनेमि की माँ का। उसने कहा है-'बेटे, सुनो एक माँ पाषाण की तोल का स्वर्ण दे रही है और दूसरी पाषाण के बदले स्वर्ण ले रही है। बेटे, कला का मूल्य कंचन कभी नहीं है। वह स्वर्ण सम्पदा से परे एक अलौकिक तोष है। लोभ नहीं, त्याग एक कला है। जो शिला पाषाण छोड़ती है उसमें से मूर्ति उभरती है।'

और यह क्या ? पलक झपकते अरिष्टनेमि की जकड़न खुल गई है और वह माँ के पादमूल पर मस्तक रख कह रहा है – 'माँ, शुभाशीष दो, मुझे स्वर्ण नहीं, प्रभु दर्शन हों, भावना मंगल हो, सफलताएँ मिलें, बस अब यही चाह है, यही राह है, यही लक्ष्य है, यही फल है।'

इसीप्रकार हमारी आराधना स्व के लक्ष्य से तबतक चलती रहे जबतक स्व की पूर्ण प्राप्ति न हो। हमारा प्रभु दर्शन, पूजन, वंदन, तीर्थयात्रा, स्वाध्याय, शास्त्र वाचन, दान, शिविर, पर्व अपने चैतन्य प्राप्ति के लक्ष्य को ऊर्ध्व रखते हुए हों। किसी प्रकार की स्वार्थसिद्धि, मान-सम्मान, लोभ, लौकिक आशापूर्ति की चित्त में कामना न हो, कहीं अन्तरंग अभिप्राय में भी ऐसी वासना न हो। तात्पर्य एकमात्र अपने ज्ञानस्वभाव की ही सदा ऊर्ध्वता हो। **- लेखक, अज्ञात**

10 ...तुम मनुष्य बनो

एक महान सन्त थे। उनको कोई प्रणाम करता तो वे आशीर्वाद रूप में कहते 'तुम मनुष्य बनो।' प्रत्येक मनुष्य के प्रति उनका यही आशीर्वाद रहता। एक बार एक युवक किसी मित्र के साथ सन्त ऋषि के दर्शनार्थ पहुँचा। उसने सन्तजी को प्रणाम किया। सन्त ने अपने स्वभावानुसार आशीर्वाद दिया-'तुम मनुष्य बनो।'

यह आशीर्वाद उस नवयुवक को अटपटा लगा। वह तुरन्त बोला- महाराज ! क्या आपको हम मनुष्य नहीं दिखाई देते, जो आप हमको मनुष्य बनने का आशीर्वाद दे रहे हैं। आपको हम क्या पशु दिखते हैं ?

सन्त ने उस युवक की बात ध्यान से सुनी, फिर बड़े ही मधुर स्वर में प्रेम से बोले - 'भाई ! **तुम तन से तो मनुष्य ही हो, परन्तु मन मनुष्य का नहीं है इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम मन से भी मनुष्य बनो।**

तुम चींटियों की तरह धन और अन्य परिग्रह जोड़ते हो, धन इकत्र होते ही सर्प की तरह फन फैलाकर उस पर बैठ जाते हो, पद मिलते ही कुर्सी पर बैठकर बकरे की तरह मैं-मैं करने लगते हो, जरा सा भय हुआ कि बिल्ली बन जाते हो, छोटी सी बात पर कुत्ते की तरह भोंकने लग जाते हो। अब बताओ बन्धु तुम्हें क्या कहा जाये ? **चींटी, सर्प, बकरा, बिल्ली कुत्ता या फिर तन से मनुष्य।** युवक सन्त की बात सुनकर शर्मिदा हो गया। इसीप्रकार हमारी दशा है, मनुष्य पर्याय मोक्ष प्राप्त करने के लिए सर्वोत्कृष्ट है और हम मोक्षमार्ग पर भी चलना आरम्भ न कर सके तो हम कैसे मनुष्य ? अत: हम तत्त्वाभ्यास पूर्वक तत्त्वनिर्णय करने में अपना अभ्यास रखें, तभी हमारा मनुष्यपना कहलायेगा।

– प्रकाशचन्द पहाड़िया, इचलकंरजी

11 500 भाईयों में सर्वश्रेष्ठ श्रेणिक, फिर भी...राजा चिलातपुत्र

आदि सम्राट चक्रवर्ती भरत के भारत में एक मगध नाम का प्रान्त था इसमें स्वर्गों से भी सुंदर राजगृही नगरी थी, उसमें एक दयालु व निरभिमानी राजा राज्य करता था, उसके श्रेणिक आदि 500 योग्य व व्यवहार कुशल पुत्र थे। परन्तु उसका पड़ौसी राजा सोमशर्मा अहंकारी, ईष्यालु व निर्दयी था। अतः सोमशर्मा की दुखी प्रजा का दुख दूर करने के लिए एक दिन दयालु राजा ने सोमशर्मा पर चढ़ाई कर दी और राजा सोमशर्मा को युद्ध में पराजित कर दिया एवं उसे समझाकर, उस पर दया करके उसका राज्य भी उसे वापस कर दिया। इससे सोमशर्मा के अहंकार को ठेस पहुँची और उसने उस दयालु राजा से बदला लेने का निकृष्ट और घ्रणित कार्य करने का निर्णय कर लिया।

सत्य ही है करुणावान विवेकवान मनुष्य दूसरों को जीतकर भी अभिमान नहीं करते बल्कि उनसे सहृदयता का व्यवहार कर उन्हें जीता हुआ राज्य देकर संतुष्ट करते हैं **तथा मिथ्या अहंकारी और क्रूर परिणामी को अच्छे कार्य भी नहीं सुहाते,** वह अपना अपमान हुआ मानकर उससे बदला लेने की सोच कर उल्टा पाप ही बाँध लेते हैं।

अत: सोमशर्मा ने अपने इस घृणित पापकार्य को क्रियान्वित करने हेतु एक भयानक चाल चलते हुए एक खूँखार घोड़ा मंगाकर उसे इसप्रकार से सिखा दिया कि वह अपनी सवारी को भयानक नुकसान पहुँचा सके। जब घोड़ा इस भयानक व खतरनाक कार्य करने का अभ्यासी हो गया, तब उसने अपने एक विश्वासपात्र कर्मचारी द्वारा उसे श्रेणिक पिता तक पहुँचाने का आदेश दे दिया।

वह विश्वस्त कर्मचारी एक सौदागर का रूप धारण कर श्रेणिक के

पिता के दरबार में जा पहुँचा। उस घोड़े को देखकर श्रेणिक के पिता महाराज आश्चर्य चकित हो गये।

वे सोचने लगे – अरे वाह ! यह कोई सामान्य घोड़ा नहीं है, यह तो अश्वरत्न है अश्वरत्न ! ऐसा घोड़ा तो मेरी घुड़साल में भी नहीं है। और फिर बिना सोचे समझे ही राजा ने घोड़े पर बैठकर एड़ लगा दी, घोड़ा उन्हें जंगल की ओर ले भागा। राजा ने उसे काबू में लेने की बहुत कोशिश की, परन्तु वे उसे काबू में न कर सके। इसीलिए तो कहा है कि **''बिना सही जानकारी के कोई कार्य नहीं करना चाहिए।''**

यह समाचार सुनकर नगर में भगदड़ मच गई, रानियाँ मूर्च्छित हो गईं और सैनिक घोड़ा पकड़ने के लिए पीछे-पीछे भागे। बहुत खोज करने के बाद भी हताश सैनिक राजा को नहीं खोज सके, खोज भी कैसे सकते थे, वह घोड़ा तो राजा को एक गहरे गड्ढे में पटककर भाग गया था। परन्तु **जिसका आयु कर्म शेष होता है उसे कोई नहीं मार सकता,** अतः राजा को जंगल के सरदार यमदण्ड ने उस गड्ढे से बाहर निकाल लिया और अपनी झोपड़ी में ले जाकर उसका योग्य उपचार किया। राजा ठीक होने पर विचारने लगे सोमशर्मा तो दुष्ट है, धोखेबाज है पर उसका भेजा हुआ घोड़ा भी दुष्ट होगा ? मुझे यह एहसास नहीं था। ठीक ही है, आखिर जानवर ही तो है, जिसकी खाता है उसकी निभाता है।

सरदार यमदण्ड की बेटी ने राजा को जलपान कराया, तब राजा उसके रूप लावण्य को देखकर उस पर मोहित हो गया और रात भर

उसके ही स्वप्न देखता रहा तथा प्रातः उसके पिता के समक्ष उससे शादी का प्रस्ताव रख दिया।

यमदण्ड ने कहा – 'महाराज ! यदि आप तिलकवती से उत्पन्न सन्तान को युवराज बनाने का वचन दें तो मैं अपनी पुत्री का विवाह सहर्ष आपके साथ करने को तैयार हूँ।' राजा ने यह शर्त मंजूर करके तिलकवती के साथ विवाह कर लिया और प्रसन्नता पूर्वक राजगृही आ गये। कुछ समय बाद तिलकवती ने एक पुत्र को जन्म दिया, उसका नाम चिलातपुत्र रखा गया। पूर्व की रानियों से भी राजा के अनेक पुत्र थे, तथापि राजा उपश्रेणिक, चिलातपुत्र को युवराज बनाने के लिए वचनबद्ध थे। साथ ही उन्हें चिलातपुत्र के द्वारा राज्य के नष्ट होने का भी भय था, किन्तु वचनबद्धता का प्रश्न उनके सामने आकर खड़ा हो जाता, इसीलिए तो कहा है - '**भावुकता या अविवेक में कोई निर्णय नहीं करना चाहिए।**'

एकदिन ज्योतिषियों से पूछने पर सभी ने एक स्वर से कहा– राजन् इसके लिए तो राजकुमारों की बुद्धि परीक्षा करनी चाहिए। दूसरे दिन राजा ने राजकुमारों से परीक्षा संबंधी सारी बात कही।

तब श्रेणिक ने कहा – पिताश्री ! हम आपकी बात समझ गये हैं, हम अपनी योग्यता की परीक्षा देने के लिए तैयार हैं।

प्रिय पुत्रो ! कसौटी पर कसे बिना न सोना पहचाना जाता है और न ही उसका मूल्य ही मिलता है ऐसा कहकर राजा ने घड़े में ओस लाने का कहा। राजा की बात से सभी राजकुमार असमंजस्य में पड़ गये परन्तु श्रेणिक ने रुई से केले के पत्ते पर रखी ओस को बटोरकर घड़ा भर लिया और परीक्षा में सफलता प्राप्त की।

तत्पश्चात् राजा ने दूसरी परीक्षा ली। लड्डुओं से भरी टोकरी का मुँह कपड़े से बाँध दिया और टोकरी का मुँह खोले बिना लड्डू खाने

को कहा। सभी ने तो टोकरी खोलकर लड्डू खा लिये; परन्तु श्रेणिक ने टोकरी को जोर–जोर से हिलाकर लड्डू फोड़ डाले और उसमें से गिरे चूरे को खाकर यह परीक्षा भी जीत ली।

जब दो परीक्षाओं में श्रेणिक जीत गया तो एक परीक्षा गुप्तरूप से ली गयी।

अब राजा ने महल में आग लग गई है ऐसी अफवाह फैला दी, यह सुनकर कोई अपने कपड़े लेकर भागा, तो कोई भोजन, तो कोई खिलौने; परन्तु श्रेणिक छत्र–चमर, सिंहासन राजचिन्ह लेकर भागा। इसप्रकार तीसरी परीक्षा में जीते श्रेणिक की बुद्धि से राजा प्रभावित भी हुआ और चिन्तित भी....राजा बनने के लक्षण तो श्रेणिक में हैं...। परन्तु अब चिलातपुत्र को राज्य देने के मेरे वचन का क्या होगा ?

तब एक कूटनीतिज्ञ मंत्री ने कहा – चिन्ता क्यों करते हैं राजन् ! अबकी बार वह नहीं जीत सकेगा। योजनानुसार दूसरे दिन जब सभी को एक साथ भोजन परोस दिया। तभी अचानक....उन सबके बीच कुत्तों को छोड़ दिया, सभी तो अपनी–अपनी थाली छोड़कर भाग गये, परन्तु श्रेणिक एक हाथ से कुत्तों की तरफ भोजन फेंकता गया और दूसरे हाथ से स्वयं खाता गया। राज्य प्राप्ति के सभी लक्षण धीरता–वीरता व सौभाग्य आदि श्रेणिक में देखकर तो राजा घोर चिन्ता में ही पड़ गया।

उसने अपने मंत्री सुमति व अतिसार से विचार किया। राजा के योग्य तो श्रेणिक ही है, परन्तु वचन तो..। चिन्ता न करें राजन् ! हमने

उपाय सोच लिया है, बस हमें तो आपकी आज्ञा चाहिए, राजाज्ञा पाकर वे मंत्री श्रेणिक के पास गये और बोले – कुमार ! महाराज आपसे सख्त नाराज हैं, अतः आपको यह देश छोड़कर जाना होगा।

परन्तु मेरा अपराध ? – श्रेणिक ने कहा।

वाह ! अब हमसे ही अपराध पूछते हो। कल बड़े मजे से कुत्तों के बीच भोजन... छी... छी... छी.... शर्म आनी चहिये।

मंत्रीवर ! उस समय तो यत्न से भोजन की रक्षा ही योग्य थी। जो राजकुमार अपने भोजन पात्रों की ही रक्षा नहीं कर सकता, वह प्रजा की क्या रक्षा करेगा ? अतः आपका कहना न्यायसंगत नहीं है। मंत्रियों ने पुन: समझाया – अरे भाई ! अब बहस का समय नहीं है, अभी तो शान्ति ही श्रेष्ठ है, सिंह भी शान्ति से दो कदम पीछे हटकर अपने लक्ष्य को जाता है। अतः तुम्हें तुरन्त यह देश छोड़ने में ही भलाई है।

तब श्रेणिक ने काफी सोचा-समझा; और माँ को बिना बताये ही राजगृही छोड़कर चल दिया। जब यह समाचार प्रजा व माँ ने सुना तो उन्हें दुःख तो बहुत हुआ, पर भवितव्य का विचार कर समता धारण की। राजा को भी योग्य व अधिकारी होने पर भी श्रेणिक को राज्य नहीं देने का अफसोस एवं दुःख हुआ, पर .... वह सोचने लगा...

यद्यपि श्रेणिक मुझे बहुत प्रिय भी था और योग्य भी; परन्तु चिलातपुत्र को राज्य देने पर भी उसे यह चिन्ता भी प्रतिसमय सता रही थी कि श्रेणिक की योग्यता के कारण कहीं चिलातपुत्र और उनके साथी मिलकर उसे हानि न पहुँचा देवें। अतः उसे किसी प्रकार की हानि न हो, इसलिए उन्होंने पुत्रमोह को त्याग कर, उसका देश से बाहर चले जाना ही उचित समझा।

श्रेणिक देश छोड़कर कहाँ गये और उनके जीवन में क्या-क्या घटनाएँ घटी, उन्हें अपना छूटा हुआ राज्य वापस मिलता है या नहीं? – यह जानने के लिए आगामी कथा पढ़िए।

12 श्रेणिक का चातुर्य
(देश निकाला एवं नंदश्री की प्राप्ति)

जब श्रेणिक अपने राजगृही नगर से निकलकर जंगल में भूखा-प्यासा भटक रहा था, तब उसे एक इन्द्रदत्त नामक सेठ मिला, तो उसने उसका स्नेह पाने के भाव से उससे कहा - मामाजी नमस्ते! और उसके साथ चल पड़ा। पर यह सुनकर इन्द्रदत्त को कुछ समझ नहीं आया कि इसने मुझे मामाजी क्यों कहा? थोड़ी देर बाद वे दोनों नन्दिग्राम के सरपंच के यहाँ पहुँचे, पर वहाँ से भी उन्हें अपमानित करके भगा दिया गया।

इस तरह अपमानित भूखा-प्यासा श्रेणिक इन्द्रदत्त के साथ बौद्ध साधुओं के मठ में जा पहुँचा। बौद्ध साधुओं ने अपने अनुमान ज्ञान से श्रेणिक को भविष्य का राजा जानकर उससे उत्तम व्यवहार करते हुए कहा - ''आइये-आइये.... नरश्रेष्ठ! पहले भोजनादि से प्रसन्न होइयेगा। यह आश्रम आपका ही है! यहाँ कुछ दिन रहकर इसे शोभित करें।''

श्रेणिक भी बौद्धमठ में कुछ दिनों रहकर शिक्षा प्राप्त करने लगा, पर एक दिन बौद्धाचार्य ने कहा - ''आप बौद्धधर्म स्वीकार कर लें, इससे आपको राज्य व सुख की निःसन्देह प्राप्ति होगी।'' बौद्धाचार्यों की सेवा सहानुभूति व उपदेश से प्रभावित होकर श्रेणिक बौद्ध बन गया। अब वह बुद्धं शरणं गच्छामि का जाप करने लगा।

श्रेणिक बौद्धधर्म अपनाने के बाद दूसरे गाँव जाते हुए मामाश्री इन्द्रदत्त सेठ से बोला- मामाश्री रास्ता बहुत लम्बा है, क्यों न हम

जिह्वारूपी रथ पर सवारी करें। परन्तु मामाश्री कुछ न समझे और मौनपूर्वक अपने गन्तव्य की ओर चलते रहे। चलते–चलते उन्हें एक नदी मिली तो वे जब नदी पार करने लगे तब मामाश्री ने जूते उतार लिए और श्रेणिक ने जूते पहन लिए, जो अभी तक तो नंगे पैर ही चल रहा था।

मामाश्री बोले तो कुछ नहीं, पर मन ही मन सोचने लगे 'मूर्ख लगता है।' नदी पार करने के बाद जब वे काफी चल दिये तो एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने के लिए रुके, वृक्ष के नीचे इन्द्रदत्त ने छतरी बन्द कर ली, जबकि श्रेणिक ने खोल ली। मामाश्री फिर मन ही मन सोचने लगे, 'यह कोई साधारण मूर्ख नहीं ! महामूर्ख लगता है।' लोग तो धूप या वरसात में छतरी लगाते हैं, जबकि यह यहाँ खोल रहा है।

आराम करने के बाद वे फिर चलने लगे, चलते–चलते वे एक नगर में पहुँचे। वहाँ श्रेणिक ने पूछा – यह नगर उजड़ा हुआ है या बसा हुआ?

इन्द्रदत्त ने खिन्न स्वर में कहा – भानजे ! तेरा उत्तर तो नहीं मालूम, पर इतना अवश्य पता है कि तेरी बुद्धि उजड़ चुकी है, मूर्ख कहीं का।

श्रेणिक इसप्रकार के अटपटे प्रश्न करते हुए आगे बढ़ रहा था कि तभी...एक अर्थी को जाते हुए देखकर श्रेणिक बोला – मामाश्री ! यह मनुष्य आज मरा है कि जन्म से ही मरा है? परन्तु श्रेणिक को मूर्खाधिराज समझते हुए इन्द्रदत्त आगे बढ़ रहा था तभी उसे अपने गाँव का प्रवेशद्वार दिखा अत: वह बोला – मैं तो चला गाँव, परन्तु तू यहीं ठहर कहीं जाना नहीं, समझे ! किसी को भेजूँगा।

श्रेणिक वहीं बैठ गया। घर पहुँचकर सेठ ने रास्ते का सारा समाचार अपनी बेटी नंदश्री को कह सुनाया और कहा – मुझे तो श्रेणिक बहुत मूर्ख लगा बेटी।

पिता द्वारा श्रेणिक के आचरण को सुनकर नन्दश्री बहुत प्रभावित

हुयी; उसने कहा – पिताश्री ! वह मूर्ख नहीं, बहुत बड़ा विद्वान है विद्वान। फिर उसने श्रेणिक द्वारा पूछे गये सभी अटपटे प्रश्नों के सार्थक और सटीक उत्तर दिए, जो इसप्रकार हैं –

1. तुम्हें मामा कहकर वह तुमसे स्नेह चाहता था।
2. जिह्वा रथ का अर्थ है – कथा कौतूहल करना अर्थात् बात करते-करते जाना।
3. जल में जूता न पहिनने से काँटे, पत्थर व सर्प आदि के काटने का भय रहता है।
4. वृक्ष के नीचे छतरी न लगाने से पक्षियों की 'बीट' गिरने का भय रहता है।
5. वही नगर बसा हुआ है, जहाँ जिनमन्दिरादि हैं।
6. स्वाध्यायी, दानी, धर्मात्मा के मरने पर हाल का मरा हुआ व इनसे रहित जन्म से ही मरा हुआ है।

यह जानकर इन्द्रदत्त बहुत प्रभावित हुआ और नन्दश्री ने बुद्धिवान श्रेणिक को बुलाने अपनी दासी को सब कुछ समझाकर भेज दिया।

दासी भी नन्दश्री के कहे अनुसार 'आपको मेरे स्वामी ने निमन्त्रित किया है' – यह कहकर वापस आ गई।

श्रेणिक सोचने लगा – यह तो ठीक है, परन्तु उनका घर कहाँ है और किस जगह है। कमाल है यह तो बता ही नहीं गई। अत: वह सोचने लगा। सोचते हुए (कान में तालवृक्ष का पत्ता क्यों पहिनें थी ?) वह घर का पता समझ गया और चल दिया घर की ओर।

इधर नन्दश्री श्रेणिक के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए बोली – सुन

सखी ! कुमार के आने का समय हो गया, दरवाजे पर मैंने जैसा करने को कहा वैसा कर दिया। अब देखती हूँ वह कितना चतुर है...उधर श्रेणिक दासी के दिखाये संकेत को खोजने लगा...अरे ! यही है तालवृक्ष... उसी का पत्ता दासी ने कान में लगाया था। यही घर है।

जब श्रेणिक 'नन्दश्री' के द्वार पर आया... तब फिर उसे एक और नजारा देखने मिला जिसे देखकर वह सोचने लगा– गजब है अभी तो बरसात भी नहीं है, शहर में कहीं भी कीचड़ नहीं था, यहाँ ही क्यों है? और ईंटें भी रखी हैं, इन पर पैर रखूँगा तो गिरूँगा... हँसी होगी... अत: श्रेणिक कीचड़ में ही चलने लगा। यह देख नंदश्री आश्चर्यचकित रह गई। वाह ! ऐसी चतुराई और कहाँ ?

फिर भी नंदश्री का मन नहीं भरा। अत: उसने दासी के साथ दरवाजे पर एक गिलास पानी भिजवाकर कहलवाया कि हाथ–पैर धोकर भोजन हेतु पधारें। श्रेणिक विचार करने लगा, कहाँ तो इतना कीचड़ और कहाँ इतना–सा पानी ? इससे कीचड़ धुल सकेगा ? एक क्षण विचारकर श्रेणिक ने तालवृक्षों के पत्तों व लकड़ी से खुरचकर कीचड़ साफ की और आधे गिलास पानी से पैर धोकर शेष पानी वापस कर दिया।

महल में प्रवेश करने पर नन्दश्री ने श्रेणिक से भोजन के लिए निवेदन किया, तब श्रेणिक ने कहा – हे मनोहरांगी ! मैं भोजन वही करूँगा, जो मेरी प्रतिज्ञा के अनुसार बना होगा। नन्दश्री के द्वारा आग्रहपूर्वक पूछने पर....बोला – इन 32 चावलों से ही जो दूध–दही युक्त सरस भोजन बना सके तो...

ठीक है, ऐसा ही होगा कहकर नन्दश्री ने 32 चावलों की गोलियाँ बनाकर और दासी को समझाकर बाजार भेज दिया। दासी ने बाजार जाकर सेठों से कहा कि ये मंत्रित गोलियाँ हैं, जिसके पास रहेंगी,

वह सदा सफल रहेगा... सेठों ने उन गोलियों को अशर्फियाँ देकर ले लिया। जिनसे दासी दूध-दही आदि सभी सामग्री खरीदकर ले आई और उससे नंदश्री ने बहुत ही स्वादिष्ट भोजन बनाकर श्रेणिक को भोजन कराया। भोजनोपरान्त श्रेणिक ने कहा – वाह वाह ! भोजन तो बहुत ही स्वादिष्ट था।

फिर कुछ दिनों श्रेणिक नन्दश्री के ही घर रहे और रहते हुए उनमें परस्पर प्रेम हो गया। उनके प्रेम को देखकर सेठ इन्द्रदत्त ने शुभमुहूर्त में उनका विवाह कर दिया, उसी नगर में रहते हुए नन्दश्री ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया। जो बिल्कुल उन दोनों की ही तरह बुद्धिवान और और रूपवान था। उसका नाम रखा गया अभयकुमार।

श्रेणिक, नन्दश्री और अपने पुत्र अभयकुमार के साथ सेठ इन्द्रदत्त के ही घर में समय व्यतीत कर रहे थे कि तभी उन्हें एक गुप्तचर द्वारा समाचार मिला कि पिताश्री परलोक[1] सिधार गये और चिलातपुत्र राजा बन गया है तथा राजगृही में अराजकता फैल गई है। अत: आपको शीघ्र राजगृही चलना चाहिए। समाचार सुनते ही श्रेणिक ने नन्दश्री से कहा – प्रिये ! मेरा जाना जरूरी है। अतः जबतक मैं न बुलाऊँ तबतक तुम अपने पिता के घर पर ही रहना।

आगे क्या होता है ? श्रेणिक को राज्य मिलता है या नहीं, चिलातपुत्र श्रणिक के आने पर क्या करता है ? यह सब जानने के लिए आगामी कथा जरूर पढ़ें।

---

1. ''श्रेणिक के पिता ने संसार से उदास होकर दीक्षा ले ली थी'' – यह बात आराधना कथा कोष में आती है। जिसका विवरण इसप्रकार है – ''कुछ काल बाद राजा उपश्रेणिक संसार से उदास हो गये। उन्होंने चिलातपुत्र को राज्य देकर जिनदीक्षा अङ्गीकार कर ली। यद्यपि चिलातपुत्र राजा तो हो गया; परन्तु उसके जातिगत स्वभाव में परिवर्तन नहीं हुआ; इस कारण वह प्रजा को वृथा ही दण्ड देने लगा, जिससे प्रजा में असन्तोष व्याप्त हो गया और उसके प्रति घृणा का वातावरण निर्मित हो गया।''

13 श्रेणिक को राज्य एवं रानी चेलना की प्राप्ति

श्रेणिक के आने का समाचार मगध देश में फैल गया। प्रजा को विश्वास हो गया कि अब हम पर हो रहा अत्याचार समाप्त हो जायेगा। श्रेणिक आये समझो हमारी शान्ति आ गयी। एकतरफ राजगृही की प्रजा श्रेणिक के आने पर यह अनुभव कर रही थी, वहीं दूसरी ओर चिलातपुत्र ने यह सुना तो वह डर के मारे कुछ सोना-चाँदी लेकर गायब हो गया। उधर सारे मंत्री व नागरिक श्रेणिक को राजा बनाने के पक्ष में हो गये और उसे गाजे-बाजे के साथ राजदरबार में प्रवेश कराया।

एक दिन राजा श्रेणिक को बीते दिन याद आने लगे, जब नन्दी ग्रामवासियों ने उन्हें बुरे दिनों में भोजन तक नहीं दिया था, अत: वह सोचने लगा– अब अपमान का बदला लेकर रहूँगा। फलस्वरूप राजा ने मंत्री को बुलाकर नन्दिग्राम खाली करने का आदेश दे दिया।

मंत्री ने कहा - महाराज ! इससे तो आपकी बहुत बदनामी होगी। परन्तु जब श्रेणिक ने पूरी घटना कह सुनायी तो... मंत्रियों ने क्रोध को शान्त करने की कोशिश करते हुए कहा- महाराज ! अन्याय से तो राज्य में पापियों की संख्या बढ़ेगी। राजन् ! आप क्षमाशील हैं, कृपालु हैं, आप उन्हें क्षमादान करें तो श्रेष्ठ रहेगा। स्वामी ! राजा के न्यायवान होने से प्रजा भी न्यायप्रिय होती है। नीतियुक्त वचनों से राजा का क्रोध शान्त तो नहीं हुआ पर कुछ कमजोर अवश्य पड़ गया। अत: वह उन्हें परेशान करने के लिए युक्ति सोचने लगा।

एक दिन मंत्री को उसने बुलाकर कहा - जाओ ! इस बकरे को नन्दिग्राम वालों को देकर आओ और कहना इसे खूब खिलायें, परन्तु

सावधान! यह न तो मोटा होवे न ही वजन बढ़े। अन्यथा राजदण्ड...

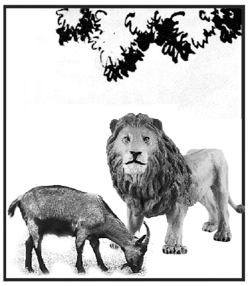

बकरा लेकर नौकर नन्दि गाँव चल दिया... गाँववालों ने जब राजाज्ञा सुनी तो उनके होश उड़ गये। अब हमें क्या करना चाहिये? यह सोचते-सोचते उन्हें याद आया कि अरे, अपने गाँव में अभी-अभी एक बुद्धिमान बालक आया है। चलो वहाँ ही कुछ समाधान हो। सभी लोग उस बालक के पास गये, उसने कहा - इसे दिन में खूब खिलाओ और रात में शेर के सामने बाँध दो।

एक माह बाद जब बकरे को राजदरबार में ले जाया गया तो श्रेणिक देखकर सोचने लगा - यह कैसे सम्भव है ? खैर, उसने पुन: एक हाथी की ओर संकेत करते हुए कहा - जाओ अब इस हाथी का वजन तौलकर ले आओ। गाँव वाले यह सुनकर चिन्तित तो बहुत हुए पर उस बालक की चतुराई याद आते ही उनका मन कुछ शान्त हुआ और फिर सीधे उस बालक के पास जाकर उन्होंने अपनी समस्या बताते हुए समाधान हेतु निवेदन किया।

अभयकुमार - चिन्तित होने की बात नहीं, इसे नदी के किनारे ले जाओ, वहाँ इसे नाव पर खड़ा करके नाव पानी में उतार देना और नाव जितनी डूब जाए उतने पर निशान लगा लेना। फिर नाव को बाहर निकाल कर हाथी को उतार देना और नाव में उतने ही निशान तक कंकड़ पत्थर डालकर उन्हें तराजू से तौल लेना। इसप्रकार हाथी का वजन आसानी से निकल जावेगा। इस पद्धति से हाथी का वजन निकाल कर जब गाँव वाले हाथी का वजन बतलाने राजदरबार गये। तब श्रेणिक को बड़ा आश्चर्य हुआ, पर उसने दण्ड देने की अपनी जिद न छोड़ते हुए क्रोधित हो पुनः आज्ञा दी। जाओ! शीघ्र ही बालू की रस्सी बनाकर लाओ वर्ना मृत्यदण्ड... इस आदेश से सभी चिन्तित हुए और सोचने

लगे वह बालक न होता तो हम कभी के... वह तो हमारा भगवान है।

फिर सभी बालक के पास गये उसने उपाय बताया। बताये गये उपायानुसार वे दूसरे दिन वे श्रेणिक के यहाँ पहुँच गये और बोले – राजन्! बालू की दूसरी रस्सी मिले तो वैसी ही सेवा में हाजिर कर दें अन्यथा हमारे अपराध क्षमा कर दें।

सही उत्तर सुन श्रेणिक सोचने लगा – वहाँ अवश्य ही कोई बुद्धिमान आया है, इनमें इतनी बुद्धि है ही नहीं... यह सोचकर श्रेणिक ने गुप्तचरों को आदेश दिया कि पता करो इनको कौन बचने का रास्ता बतलाता है। पश्चात् जब श्रेणिक को गुप्तचरों के माध्यम से पता चला कि एक बहुत ही बुद्धिमान बालक है, जिसका नाम 'अभय' है और उसकी माता का नाम नन्दश्री है। तब वह नंदिग्राम वासियों से अपना बैर भुलाकर उन दोनों को उत्सव पूर्वक घर बुला लेता है।

(2)

राजा श्रेणिक अपने राज–काज एवं पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वाह करते हुए जीवन व्यतीत कर रहे थे कि एक दिन किसी चित्रकार ने राजकुमारी चेलना का चित्र भेंट किया, देखते ही श्रेणिक आश्चर्य में पड़ गये, सोचने लगे कि यह सुन्दरी कौन है ? किस देश की राजकुमारी है ? किसकी पुत्री है ? मुझे कैसे प्राप्त हो सकती है आदि आदि।

जानकारी करने पर पता चला कि सिन्धुदेश के राजा चेटक की सात कन्याओं में यह छठवीं कन्या है और इसका नाम चेलना है। परन्तु वह वीतरागी देव–शास्त्र–गुरु भक्त श्रावक को ही अपनी कन्या देता है। यह सुनकर राजा श्रेणिक सोच में पड़ गये कि मैं तो बौद्ध हूँ, अब क्या किया जा सकता है? इस चिंता में वे अत्यंत चिंतित और उदास रहने लगे। पिताश्री की चिंता और उदासी का कारण जब अभयकुमार को पता चला तब उसने पिता की आज्ञा से इस कार्य को करने के लिए एक

जैन श्रेष्ठियों का संघ तैयार किया और राजा चेटक के यहाँ जा पहुँचा और सावधानी पूर्वक जैन होने का नाटक करते हुए पूजा पाठ करने लगा।

इनके बहुत धर्मात्मा होने की खबर राजा चेटक तक भी पहुँची। तभी अभयकुमार भी वहाँ पहुँच गया और बोला – हम जौहरी हैं और अनेक देशों में घूमते हुए यहाँ आये हैं। यहाँ कुछ दिन ठहरना चाहते हैं। राजा चेटक ने कहा– हाँ, हाँ, क्यों नहीं। आप तो सज्जन हैं, हमारे ही महल में ठहरें। राज कन्याएँ प्रतिदिन इनकी पूजन–भक्ति देखकर अत्यधिक प्रभावित हुईं और एक दिन चेलना ने आकर कहा– आप धन्य हैं, आप जैसा भक्त, ज्ञानवान व रूपवान हमने आज तक नहीं देखा... आपका देश कौनसा है व वहाँ के राजा कौन हैं?

अभय ने कहा – हम मगध देश के जैनधर्म भक्त, रूपवान, गुणवान राजा श्रेणिक की प्रजा हैं।

राजा श्रेणिक के ज्ञान की प्रशंसा सुनकर वे कन्याएँ उनसे विवाह के लिए ललचाने लगीं। एक दिन वे चुपचाप अभय के पास आयीं और अभय से कहने लगीं –

महान श्रेणिक हमारे कैसे हों, कृपया हमें उपाय बतावें। कहाँ तो वे पुरुषोत्तम और कहाँ हम... परन्तु वे ही हमारे स्वामी हों... नहीं तो यह जीवन बेकार है। अब तो हमारी आँखों से नींद उड़ गई।

उन कन्याओं की बातें सुनकर अभय मन की मन प्रसन्न हुआ। और एक गुप्त सुरंग बनाकर चेलना को रथ पर बैठाकर राजगृह ले आया। सेठ इन्द्रदत्त के यहाँ चेलना को ठहरा कर पिता महाराज राजा श्रेणिक को समाचार दिया पश्चात् श्रेणिक और चेलना की शादी हो गई। कुछ समय बाद चेलना ने 'कुणिक' को जन्म दिया, तभी 'कुणिक' को लाड़–प्यार करती हुई चेलना को एक ज्योतिषी द्वारा ज्ञात हुआ कि

कुणिक ही राजा श्रेणिक अर्थात् अपने पिता की मृत्यु का कारण होगा। यह जानकर चेलना ने भयभीत होकर अपने ही बच्चे 'कुणिक' को जंगल में फिकवा दिया।

अरे रे, देखो तो परिणामों का खेल, एक समय पहले जिसे लाड़–प्यार कर रही थी, जिसे कितना कष्ट सह कर जन्म दिया, पति का मरण न हो जाए इस भय से अब उसी को जंगल में फिकवा दिया।

विचार करो कि क्या कुणिक को जंगल में फिकवा देने से श्रेणिक की मृत्यु टल जायेगी ? कदापि नहीं। फिर भी मोह और भय से एक संज्ञी पंचेद्रिय जीव को हानि पहुँचाने के भाव करके यह जीव कैसे खोटे पाप कर लेता है जबकि उसे हानि होना नहीं होना उसके भवितव्य पर निर्भर करती है। आगे देखें, कुणिक का क्या होता है?

जब इस बात का पता श्रेणिक को चलता है तब वे उसे तुरन्त वापस मंगवा लेते हैं और उसका भले प्रकार पालन–पोषण करते हैं।

रानी चेलना के रूप में मानो राजा श्रेणिक ने अपनी मृत्यु ही बुलाई हो। इससे होनहार, भवितव्य, क्रमबद्धपर्याय आदि सिद्धान्तों का सहज ही बोध होता है। भव्यजीव इनको समझ कर सहज ही समता धारण कर मुक्तिमार्ग पर लग जाते हैं और **अज्ञानी उनमें फेर–बदल करने की भावना से अपना संसार बढ़ा लेते हैं, वर्तमान में तो दुखी होते ही हैं, कर्मबंधन कर भविष्य में भी दुखी होते हैं। अत: हमें सदा सावधान रहना चाहिए।**

राजा श्रेणिक (बौद्ध) और रानी चेलना (जैन) के गृहस्थ जीवन की विसंगतियाँ, यशोधर मुनिराज पर उपसर्ग, श्रेणिक का जैनधर्म अपनाना, कुणिक को राज्य मिलना, श्रेणिक का मरण आदि घटनाओं को जानने के जिज्ञासु पाठक आगामी कथा अवश्य पढ़ें।

14 श्रेणिक द्वारा यशोधर मुनिराज पर उपसर्ग एवं बोध प्राप्ति

राजा श्रेणिक एवं रानी चेलना का अपने राजकीय एवं गार्हस्थ कार्यों के साथ सहज प्राप्त भौतिक सुखमय जीवन व्यतीत हो रहा था कि अचानक एक दिन रानी चेलना को राजमहल में बौद्ध साधुओं के आने पर ध्यान आया। अरे ! यहाँ जैन साधुओं को आते तो कभी देखा नहीं? वीतरागी जिन भगवान की पूजन होते भी कभी नहीं देखा, अरे रे ! यहाँ तो सभी विधर्मी हैं। (आह भरते हुए) अरे ! पुत्र अभय ने अपने को जैन बताकर मुझे ठग लिया। प्रभो ! मैंने कौनसा पाप किया था, जो जैनधर्म से विमुख होना पड़ा – ऐसा विलाप करते हुए दुखी चेलना ने अब तो खाना-पीना भी छोड़ दिया। जब श्रेणिक को पता चला तो वे बहुत दुखी हुए और बहुत समझाया, पर जैनधर्म की दृढ़ श्रद्धानी चेलना को अपने निर्णय से नहीं डिगा सके। वे बार-बार समझातीं कि स्वामी! जैनधर्म व जैन साधु ही श्रेष्ठ हैं। ये जीव जन्तुओं पर दया भी करते हैं। फिर आप ही बतावें कि हम इस सुखकारी जैनधर्म को कैसे छोड़ें?

अन्त में श्रेणिक ने ही हार मानकर कह दिया कि ठीक है, जो तुम्हें अच्छा लगे तुम वही करो, परन्तु दुखी न रहो। अनुकूल उत्तर पाकर रानी धर्माराधना करते हुए महल में ही सभी को जैनागम पढ़ाने लगी।

यह जानकर बौद्ध साधु भयभीत होकर श्रेणिक के पास आकर बोले– सुना है चेलना रानी महल में जैनधर्म पढ़ाती हैं, इससे तो बौद्धधर्म रसातल में पहुँच जाएगा। राजा ने कहा – मैंने बहुत समझाया... पर वह मानती ही नहीं। तब बौद्ध साधुओं ने कहा – रानी चेलना को हम समझा देंगे, आप आज्ञा तो करें। और राजा से अनुकूल उत्तर पाकर एकदिन वे महल में आकर रानी चेलना को समझाते हैं– रानी ! तेरा जैनधर्म कदापि श्रेष्ठ

नहीं है, भूखों व नंगों का यह धर्म ज्ञान–विज्ञान रहित है, अरे इन दीन–दरिद्रों की सेवा करोगी तो ऐसा ही फल पाओगी। हमने अपनी सर्वज्ञता से ऐसा जाना। रानी ने भी दृढ़ता से उत्तर दिया – नहीं नहीं ! जैन साधु तो महान शूरवीर, निर्विकारी व विद्वान होते हैं। वे डरपोक व कायर नहीं होते इसीलिए तो शहर में नहीं, जंगल में रहते हैं और आप लोग ऐसे नहीं हो, आप अपने पापों को ढकने के लिए वस्त्र पहिनते हो आदि आदि.. दोनों ही ओर से वाद–विवाद तो होता पर कोई समाधान नहीं निकलता। समय वीतता गया।

एक दिन रानी चेलना ने बौद्ध साधुओं को भोजन कराने का निर्णय लिया, जिससे उन्हें लगा कि शायद रानी पर हमारा प्रभाव काम करने लगा पर परिणाम उससे विपरीत ही निकला। जब वे भोजनोपरान्त जाने लगे तो निर्धारित स्थान पर उन्हें उनके पाद रक्षक (जूते) नहीं मिले।

कहाँ हैं ? ऐसा पूछने पर रानी ने कहा– आप तो सर्वज्ञ हैं, आपको यह भी पता नहीं तो मेरे अगले जन्म का क्या पता होगा ? अनुत्तरित और अपमानित हुए साधुओं को बहुत बुरा लगा, अत: वे सीधे राजा श्रेणिक से शिकायत करने चले गये।

राजा श्रेणिक को भी बहुत बुरा लगा, पर क्या करते अत: मन मसोस कर रह गये और रानी को नीचा दिखाने का अवसर तलाशने लगे।

कुछ समय बाद एक दिन राजा जंगल में शिकार खेलने गये, वहाँ उन्हें ध्यान में मग्न नग्न दिगम्बर भावलिंगी मुनिराज दिखाई दिए, उन्होंने हँसी उड़ाते हुए साथियों से पूछा– अरे ! यह नंगा कौन खड़ा है ? साथियों ने कहा – राजन् ! यही तो गंदा, मूर्ख व अभिमानी रानी चेलना का गुरु है। इतना सुनते ही क्रोध से तमतमाये श्रेणिक ने उन पर 500 भयंकर शिकारी कुत्ते छोड़ दिये, परन्तु जब कुत्तों ने साधु की शांत मुद्रा देखी तो वे उनके पास जाकर शान्त हो गये, यह देखकर राजा सोचने लगा –

लगता है मांत्रिक है, कुत्तों का मुँह बन्द कर दिया। और क्रोध से तमतमाता हुआ जब आगे बढ़ा तब उसे एक साँप दिखाई दिया, उसने उस साँप को मारकर उन यशोधर मुनि के गले में डाल दिया और वापस घर आकर राज–काज में उलझ गया।

इससे यह सिद्धांत सहज ही फलित होता है कि तत्समय की योग्यता रूप उपादान कारण के अनुसार ही सभी कार्य होते हैं। तभी तो क्रूर शिकारी तिर्यंच कुत्ते तो मुनिराज को देखकर शान्त हो गये और इसी भव के आगामी कालखण्ड में तीर्थंकर प्रकृति बाँधनेवाले राजा श्रेणिक का अविवेक व क्रोध शान्त नहीं हुआ, बल्कि विवेक शान्त हो गया।

तीसरे दिन जब राजा श्रेणिक रानी चेलना से मिले तब राजा ने रानी के साथ इस घटना का जिक्र किया। रानी चेलना सुनकर अत्यंत दुखी हुई, हाय–हाय ! यह आपने क्या किया ? बहुत बुरा किया। काश ! मैं कुँवारी ही रहती। राजा श्रेणिक ने बहुत समझाया कि अरी ! बावली क्यों होती है ? वह पाखण्डी तो अबतक साँप फेंक कर भाग गया होगा।

रानी बोली – **नहीं... नहीं...राजन् ! वे तो उपसर्ग समझकर पर्वत की तरह अचल रहकर ध्यान में लीन हो गये होंगे।**

राजा ने कहा – ऐसी बात है? तो चलो अभी चलकर देख लेते हैं, सत्य सामने आ जायेगा।

सभी रात्रि में ही वहाँ जाकर देखते हैं कि ध्यान में लीन मुनिराज का शरीर चीटियों से भरा पड़ा है। रानी के मुख से सहज ही शब्द निस्रित हुए – ''भयंकर उपसर्ग...शरीर को काट लिया है, ओह ! कितनी सूजन.. कोई उपाय...?'' फिर जमीन में चारों ओर खांड डाली, चीटियाँ शरीर पर से उतरने लगी... इस तरह चीटियों को दूर किया।

ऐसा भयंकर उपसर्ग देख रानी तो आहत हुई ही, पर राजा श्रेणिक

भी विस्मय एवं आहत से भर उठा, मन ही मन दुखी होने लगा, पश्चाताप के सागर में डूबने लगा। इतने में सुबह हो गई, मुनिराज ने दोनों को ही धर्मवृद्धि का आशीर्वाद दिया। धर्मवृद्धि स्वरूप आशीर्वाद के वचन सुनकर राजा आश्चर्य में पड़ गया। अरे ! ये क्या ? आश्चर्य, मैंने तो अहित किया, फिर भी मुझे धर्मवृद्धि का आशीर्वाद। ये कितने महान हैं और मैं सचमुच में निन्दा का पात्र हूँ। अब मेरा जीना व्यर्थ है।

तब मुनिराज ने कहा – अरे राजन् ! मनुष्यभव अन्य सभी भवों से मूल्यवान होता है। अपनी भूल पर इतना खेद क्यों ? वह तुम्हारा शिक्षक है, उससे शिक्षा ग्रहण करके भूले हुए भगवान को याद करो। भगवान बनने की सामर्थ्य को जानो, पहिचानो, स्वीकारो।

राजा को आश्चर्य हुआ। उपसर्ग करनेवाले और दूर करनेवाले के प्रति इतना उत्कृट समभाव, आश्चर्य अद्भुत आश्चर्य ! सुना तो बहुत था पर आज प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है कि अरि–मित्र महल मसान कंचन काँच निंदन थुति करन। अर्घावतारन असि प्रहारन में सदा समता धरन।। अरे ये क्या ? इन्होंने मेरे मन की बात जान ली। इनके वचन सुनकर मेरी सुप्त सामर्थ्य जाग्रत हो रही है।

इसप्रकार यशोधर मुनिराज का उपसर्ग दूर हुआ और राजा श्रेणिक आदि सभी उनका धर्मोपदेश सुनकर हर्षमिश्रित भारी मन से वापस राजगृही नगरी आ गये।

अहा ! इसे भेदज्ञान का चमत्कार कहें या अभेदज्ञान का ? अरे, वीतरागी मुनिराज को देह से इतना प्रबल भेदज्ञान था कि ऐसे भयंकर उपसर्ग में भी किंचित् भी विचलित नहीं हुए और अपने

चैतन्य आत्मा से इतनी अभेदता थी कि उसमें ही तृप्ति का अनुभव करते हुए उपसर्ग पर सहज विजय प्राप्त करली।

कुछ दिनों बाद विपुलाचल पर्वत पर भगवान महावीर का समवशरण आया। श्रेणिक ने वहाँ जाकर हजारों प्रश्न पूछे। भगवन्! मेरे मुनि बनने के भाव क्यों नहीं होते? दिव्यध्वनि में समाधान आया कि 'तुमने नरकगति का बन्ध कर लिया है' इसलिए मुनि बनने के भाव नहीं आते; परन्तु वहाँ से निकलकर उत्सर्पिणी के चतुर्थ काल में जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में तुम 'महापद्म' नामक पहले तीर्थंकर होओगे।

यह सुनकर राजा श्रेणिक घर आकर अपने पुत्र कुणिक को राज्य देते हैं और स्वाध्यायादि धर्म साधन में लग जाते हैं।

उधर राजा बना कुणिक सोचने लगा – पिता ने बाल्यकाल में मुझे जंगल में फिकवा दिया था। अब मैं भी उसका बदला उस दुष्ट को बंदी बनाकर घोर यातनाएँ देकर लेऊँगा। ऐसा विचार कर वह उन्हें बंदीखाने में बंद कराके घोर यातनाएँ दिलाने लगा।

एक दिन जब कुणिक भोजन कर रहा था तो कुणिक के पुत्र ने कुणिक की थाली में खड़े–खड़े पैशाब कर दी, परन्तु कुणिक ने उस पर ध्यान न देते हुए पुत्र से कुछ नहीं कहा, पर उसने माँ से कहा – [1]माँ ! मेरे समान इस जगत् में कोई अन्य पुत्रमोही न होगा।

तब उसकी माँ ने कहा – अरे ! तू ही क्या ? सभी का पुत्रमोह ऐसा

1. ऐसा भी आता है कि उस समय चेलना अपने पिता के घर गईं थी।

ही होता है। याद है, बचपन में जब तेरी अंगुली में फोड़ा हुआ था, तो दुर्गन्ध की परवाह न करके तेरे पिता ने ही मुँह में तेरी अंगुली रखकर मवाद चूसकर फेंका था, तब तुझे आराम मिला था।

अरे ! जिसने तुझे पढ़ाया–लिखाया राज्य–सम्पदा दी। उसके साथ ऐसा क्रूर व्यवहार, धिक्कार है तुझे ! अरे पापी ! कृतघ्नी ! उन्हें मुक्तकर और उनके चरण छूकर माफी माँग। यह बात जानकर कुणिक का भ्रम दूर हुआ, अतः वह बहुत दुःखी हुआ और मैं नीच हूँ, पशुतुल्य हूँ, क्षमा कर माँ ! मैं अभी जाकर उन्हें छुड़ाता हूँ– ऐसा कहकर कारागृह की ओर चल दिया। कारागृह की ओर आते कुणिक को देखकर श्रेणिक सोचता है। 'इतने दिनों से भूखा–प्यासा रखा, उस पर इतना अपमान, हे भगवान! अब और नहीं सहा जाता... अरे ! शायद अब यह और दुःख देने आ रहा है – इसी घबराहट में वह पैनी सलाखों से जा टकराया...।

पिता की मृत्यु देखकर कुणिक के तो होश ही उड़ गये। चेलना बेहोश हो गई। सम्पूर्ण देश में हा–हाकार मच गया। तत्पश्चात् फिर इस असार–संसार का स्वरूप पहिचान कर भव– भोगों से सर्वथा उदासीन होकर चेलना रानी ने आर्यिका चंदना से दीक्षा ले ली।

अपनी इस कथा में एक चिलातपुत्र नामक पात्र भी आया था, आपको ज्ञात होगा कि उपश्रेणिक ने श्रेणिक को राज्य न देकर उस चिलातपुत्र को राज्य दे दिया था। पर उसके अन्याय के कारण प्रजा ने पुनः श्रेणिक को बुलाकर राज्यसिंहासन पर स्थापित कर दिया था, तब वह भाग गया था।

क्या आप जानना चाहते हैं कि फिर उसका क्या हुआ ? यदि हाँ, तो आगामी कथा अवश्य पढ़ें।

15 उपसर्गजयी चिलात मुनि

श्रेणिक चरित्र में एक महत्त्वपूर्ण पात्र चिलातपुत्र है, जिसकी कथा श्रेणिक के पिता के समय से ही चल रही है। जिसे राज्य देने का वचन देने के कारण उन्हें श्रेणिक के योग्य एवं सभी परीक्षाओं में सफल होने के बाद भी राज्य श्रेणिक को न देकर चिलातपुत्र को देना पड़ा। इसप्रकार चिलातपुत्र राजा तो बन गया, पर राज्य संचालन भले प्रकार न कर पाने के कारण राज्य में अराजकता फैल गई, परिणाम स्वरूप श्रेणिक को वापस बुलाया गया, श्रेणिक के आने का समाचार सुनकर चिलातपुत्र डरकर कुछ सोना–चाँदी लेकर भाग गया और एक पहाड़ी पर घर बनाकर रहने लगा एवं छोटे–बड़े गाँवों में बलजोरी से कर वसूली करने लगा।

चिलातपुत्र का एक भर्तृ नाम का मित्र था। उसके मामा के सुभद्रा नामकी एक पुत्री थी। चिलातपुत्र के कहने पर मित्र भर्तृ ने उसका विवाह चिलातपुत्र के साथ करने के लिए मामा से प्रार्थना की, परन्तु मामा रुद्रदत्त ने चिलातपुत्र के कुलक्षणों के कारण विवाह करने से साफ इन्कार कर दिया। इससे क्रोधित होकर चिलातपुत्र, गुप्तरीति से राजगृही आया और सुभद्रा को उठाकर ले गया। जब लोगों को यह बात ज्ञात हुई तो वह चिलात को पकड़ने के लिए उसके पीछे पड़ गये। श्रेणिक ने भी चिलातपुत्र को पकड़ने का आदेश जारी कर दिया एवं स्वयं भी उसे पकड़ने के लिए निकल पड़ा। चिलातपुत्र को लगा कि अब बचना मुश्किल है, अत: उसने सुभद्रा को तो मार दिया और भागते हुए वैभार पर्वत पर चढ़ गया।

उस पर्वत पर मुनियों का एक संघ विराजमान था। मुनिराज की परम शान्त वीतरागरस झरती मुद्रा देखकर चिलातपुत्र के परिणामों में एकदम परिवर्तन आ गया। उसका क्रूर परिणाम शान्तभाव में परिवर्तित हो गया। वह संघाचार्य मुनि के समीप गया और उनको नमस्कार करके इसप्रकार प्रार्थना करने लगा –

'हे भगवन् ! मैं इस असार संसार के परिभ्रमण से त्रस्त हो गया हूँ। अब इस परिभ्रमण का अन्त करने का मुझे उपाय बताइए। हे प्रभु ! मुझ पर अनुग्रह करके आप मुझे सर्व कष्ट निवारक जिनदीक्षा प्रदान कीजिए, जिससे मैं अपनी आत्मा का हित कर सकूँ।

मुनिराज ने उसे भव्य जानकर कहा – हे भव्य ! निज हित के लिए तूने बहुत उत्तम विचार किया है, अब तेरी आयु मात्र आठ दिन ही शेष है। अतः शीघ्र ही आत्महित कर लेने योग्य है।

मुनिराज द्वारा अपने थोड़े जीवन की बात सुनकर चिलात ने उसी समय जिनदीक्षा अङ्गीकार कर ली और तुरन्त ही प्रायोपगमन संन्यास लेकर आत्मसाधना में लीन हुआ, उसे पकड़ने के लिए आये श्रेणिक को चिलातमुनि की धीरता पर अत्यन्त आश्चर्य हुआ और वह उसके साहस की प्रशंसा करता हुआ, उन मुनिराज के चरणों में वन्दन करके वापस राजगृही चला गया।

इधर चिलातपुत्र द्वारा मारी गयी सुभद्रा व्यन्तर देवी हुई थी और उसने अपना बदला लेने के लिए एक विशाल पक्षी का रूप धारण किया तथा पूर्व बैर के वश होकर वह चिलातमुनि के सिर पर बैठकर उन्हें कष्ट देने लगी। उसने अपनी चोंच से चिलातमुनि की आँखें निकाल दी और फिर मधुमक्खियाँ बनकर उन्हें काटने लगी।

इसप्रकार उसने लगातार आठ दिनों तक चिलातमुनि को बेहद

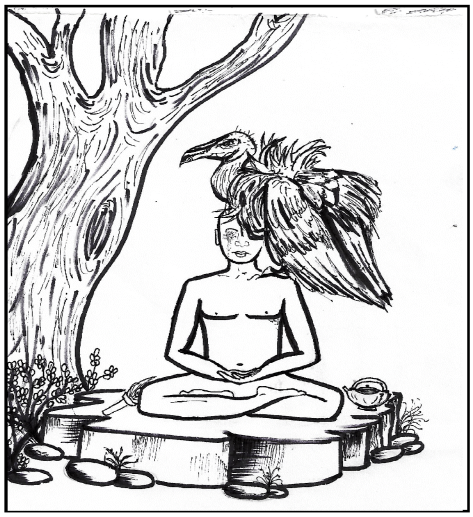

कष्ट दिया, परन्तु चिलातमुनि स्वरूपाराधना से विचलित नहीं हुए और अन्त में समाधिमरण करके सर्वार्थ सिद्धि स्वर्ग में देव पर्याय को प्राप्त हुए।

देखो, परिणामों की विचित्रता ! कुछ समय पहले एक परस्त्री के अपहरण का भाव, फिर भय से उसे मारने का भाव स्वयं के बचने हेतु भागने का भाव और अगले ही समय मुनि बनने का भाव; कोरा भाव नहीं, मरने के भय से मुनि बनने का भाव नहीं, सच्चे परिणाम पूर्वक सम्यग्दर्शन प्राप्त कर द्रव्यलिंग के साथ भावलिंग को प्राप्त करना और भयंकर उपसर्ग में भी स्वरूप से विचलित नहीं होना, तभी तो प्रायोपगमन संन्यास धारण कर अन्त में समाधिमरण करके सर्वार्थसिद्धि स्वर्ग में देवपर्याय को प्राप्त हुए।

अहो ! यह परिणामों का कैसा विचित्र चक्र है, थोड़ी देर पहले हत्या के क्रूर परिणामवाला जीव कुछ ही देर में मुनिदशा के योग्य शान्तभावरूप परिणमित हो गया। **जीवों के परिणामों की इस विचित्र परिस्थिति से सहज ही ज्ञात होता है कि प्रत्येक परिणाम अपने स्वकाल में योग्यतानुसार पूरे पाँचों समवायपूर्वक ही होता है। ज्ञानीजन परिणामों की चक्रीयता में व्यामोहित नहीं होते,** अपितु परिणामों से पार त्रिकाली ध्रुव में अपनापन स्थापित करके उसी में स्थिर होकर सादि–अनन्तकाल तक पूर्णसुखी रहते हैं।

– आराधना कथाकोष से साभार

16 शरीर से निस्पृही श्री सुव्रतमुनिराज
(वैद्य बना बंदर और बंदर बना देव)

सौराष्ट्र देश की सुन्दर नगरी द्वारिका में अन्तिम नारायण श्रीकृष्ण राज्य करते थे, श्रीकृष्ण की कई रानियाँ थीं, परन्तु उन सबमें सत्यभामा महाभाग्यवती थी। श्रीकृष्ण का सबसे अधिक प्रेम इसी रानी के प्रति था। श्रीकृष्ण तीन खण्ड के स्वामी अर्धचक्री थे। हजारों राजा–महाराजा इनकी सेवा में तत्पर रहा करते थे।

एक दिन श्रीकृष्ण, तीर्थंकर नेमिनाथ भगवान के दर्शनार्थ समवशरण में जा रहे थे, रास्ते में उन्होंने महातपस्वी श्री सुव्रत मुनिराज को एक भयंकर रोग सहित दशा में देखा। मुनिराज का सारा शरीर रोग से कष्ट पा रहा था। मुनिराज की यह दशा श्रीकृष्ण से नहीं देखी गयी। धर्मप्रेम से उनका हृदय विचलित हो गया।

अहो ! धर्मात्मा मुनिराज को ऐसा कष्ट ! नहीं, नहीं; मुझे इसके प्रतिकार के लिए कुछ उपाय अवश्य करना चाहिए। अहा ! यद्यपि मुनिराज तो निज चैतन्य की आराधना से परम शान्ति का ही अनुभव कर रहे हैं, देह के प्रति उनका लक्ष्य ही नहीं है, तो भी देह की रोगजनित दशा को देखकर जिनधर्म वत्सल श्रावक को उसके प्रतिकार का विकल्प आये बिना नहीं रहता। यह विकल्प तो मेरी भूमिका के योग्य ही है – ऐसा विचार कर उन्होंने उसी समय एक जीवक नामक प्रसिद्ध वैद्य को बुलाया और मुनि को दिखाकर औषधि के लिए पूछा। वैद्य के कहे अनुसर सब श्रावकों के घरों में उन्होंने औषधि मिश्रित लड्डुओं के बनवाने की सूचना करवा दी। थोड़े ही दिनों में इस व्यवस्था से मुनि को आराम हो गया, सारा शरीर रोगमुक्त होकर पूर्ववत् सुन्दर हो गया। श्रीकृष्ण भी यह जानकर हर्षित हुए। सच है, सुख के कारण सुपात्र दान से संसार में सत्पुरुषों को स्वाभाविक हर्ष होता है।

सुव्रत मुनिराज को निरोग अवस्था में देखकर श्रीकृष्ण अत्यन्त प्रसन्न हुए। एक दिन उन्होंने मुनिराजश्री को नमस्कार करके अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूछा – 'भगवन् ! आप अच्छे तो हैं? रत्नत्रय की कुशलता के साथ-साथ आपकी शारीरिक स्थिति उत्तम तो है न?'

मुनिराज ने कहा – 'राजन् ! शरीर तो स्वभाव ही से अपवित्र एवं नाशवान है और क्षण-क्षण में अनेक अवस्थाओं को बदलनेवाला है; इसमें अच्छा और बुरापन क्या है? परिवर्तन तो पदार्थों का स्वभाव है। अपने इसी स्वभावानुसार यह शरीर कभी निरोग और कभी सरोग हो जाया करता है। इसका कुछ भी हो, मुझे न इसके रोगी होने में खेद है और न निरोग होने में हर्ष ! मुझे तो अपने आत्मा से काम है, मैं तो उसी की पूर्ण प्राप्ति करने में लगा हुआ हूँ और वही मेरा परमकर्तव्य है।'

सुव्रत योगीराज की शरीर से इसप्रकार निस्पृहता देखकर, श्रीकृष्ण को बड़ा आनन्द हुआ, उन्होंने मुनिराज को नमस्कार कर उनकी बहुत प्रशंसा की। जब यह समाचार जीवक वैद्य के कानों में पहुँचा तो उसे इस बात का बड़ा दुःख हुआ और उसे मुनिराज के प्रति अत्यन्त घृणा उत्पन्न हुई। अहो ! कर्तव्य के अहङ्कार से ग्रस्त और मुनिराज की अन्तः परिणति से अपरिचित वह वैद्य विचारने लगा –

'अरे ! मुनि का मैंने इतना उपकार किया, उन्हें रोगमुक्त किया; तब भी उन्होंने मेरे सम्बन्ध में प्रशंसावाचक एक शब्द भी नहीं कहा!' इस प्रकार वीतरागी सन्तों की अन्तःपरिणति से अपरिचित उस अज्ञानी वैद्य ने मुनि को बड़ा कृतघ्नी समझकर, उनकी बहुत निन्दा करके अपने लिए दुर्गति के द्वार खोल लिये। इस मुनि निन्दा से उसे महापाप का बन्ध हुआ। अन्त में जब उसकी मृत्यु हुई, तब वह इस पाप के फल से नर्मदा नदी के किनारे तिर्यंचगति की बन्दर दशा को प्राप्त हुआ।

अरे ! अज्ञानियों को साधुओं के आचार-विचार, व्रत, नियम एवं

आन्तरिक वीतरागता आदि का कुछ ज्ञान तो होता नहीं है, व्यर्थ ही उनकी निन्दा करके वे पापकर्म बाँध लेते हैं, जिससे उन्हें अत्यंत दुःख उठाना पड़ता है। अत: **हमें भी सत्य को जाने बिना किसी की निंदा या उपेक्षा नहीं करना चाहिए, मुनिराजों की तो कदापि नहीं। साधर्मियों की भी नहीं, यहाँ तक कि एक सामान्य व्यक्ति की भी निंदा नहीं करना चाहिए।**

एकबार वह (जीवक वैद्य का जीव) बन्दर, जिस वृक्ष पर बैठा था, उसके नीचे ही सुव्रत मुनिराज ध्यान कर रहे थे। इस समय उस वृक्ष की एक टहनी टूटकर मुनिराज पर जा गिरी। उसकी तीखी नोंक मुनिराज के पेट में घुस गयी। पेट से खून बहने लगा। मुनि पर जैसे ही उस बन्दर की नजर पड़ी, उसे जातिस्मरण हो गया। वह पूर्व जन्म की शत्रुता भूलकर उसी समय दौड़ पड़ा और थोड़ी ही देर में बहुत से बन्दरों को बुला लाया।

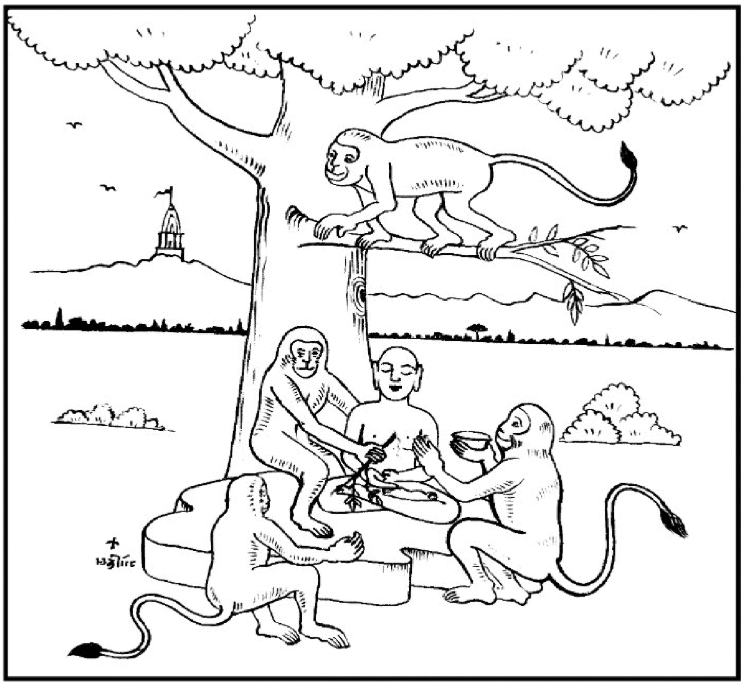

उन सबने मिलकर उस डाली को बड़ी सावधानी से खींचकर निकाल लिया और वैद्य के जीव ने पूर्व जन्म के संस्कार से जङ्गल से जड़ी–बूटी लाकर उसका रस मुनि के घाव पर निचोड़ दिया, जिससे मुनिराज का घाव ठीक हो गया। इस भाव से बन्दर ने भी बहुत पुण्यबन्ध किया।

देखो ! पूर्व जन्मों में जैसा अभ्यास/संस्कार होता है, दूसरे जन्मों में भी उसके संस्कार बने रहते हैं और प्रायः जीव वैसा ही कार्य करने लगता है। एक बन्दर (पशु) में इसप्रकार की दयाशीलता देखकर, मुनिराज को अवधिज्ञान द्वारा उसके जन्म का सब वृत्तान्त ज्ञात हो गया। तब उन्होंने उसे भव्य समझकर अत्यन्त करुणाभाव से पूर्वजन्म की सर्व कथा सुनाई और धर्म का उपदेश देते हुए कहा –

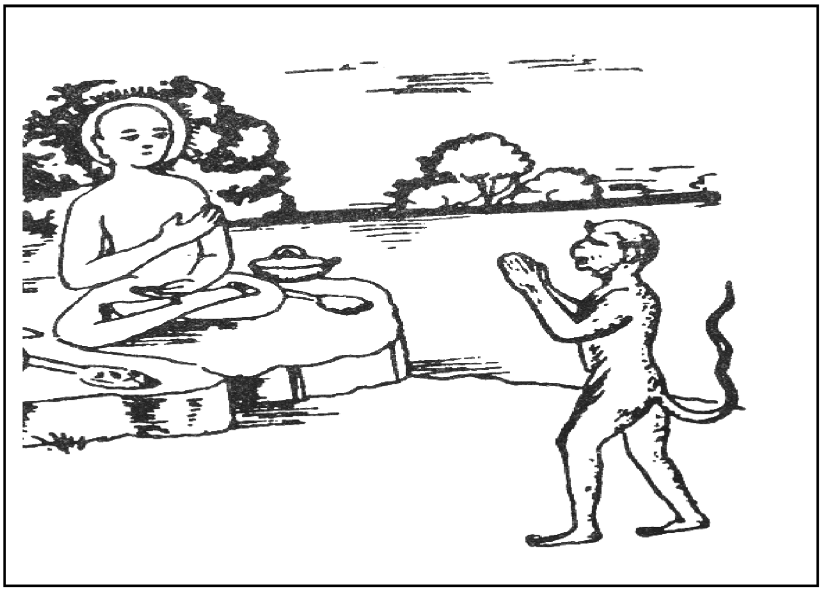

‘हे भव्य ! विगतभव में कर्तृत्व के अहङ्कार में फँसकर, वीतरागी मुनिदशा के अविनय के फल में तुम इस बन्दर पर्याय को प्राप्त हुए हो। अरे ! **वैद्य पर्याय हो या बन्दर पर्याय; तुम तो अनादि अनन्त आत्मा**

हो। ज्ञान और आनन्द ही तुम्हारा स्वभाव है। अबतक तुमने दूसरों के शारीरिक रोग मिटाने में अपना जीवन व्यतीत किया है; भाई! अब अपने आत्मा के भवरोग का नाश करने के लिए अन्तर्मुखी प्रयत्न करो।'

मुनिराज के मुखचन्द्र से उपदेशरूपी अमृत की वर्षा हो रही थी और बन्दर, मेढ़े की भाँति टकटकी लगाकर उपदेशामृत का पान कर रहा था। बन्दर की निकटभव्यता का परिपाक देखकर मुनिराज की अकारण करुणा बरसाती वाणी खिरने लगी –

'हे भव्य ! मेरी ओर टकटकी लगाकर क्या देख रहा है? अपनी ओर देख ! **तेरे भव का अभाव मेरी ओर/पर की ओर देखने से नहीं; अपनी निजात्मा की ओर देखने से होगा।**

देख...देख... अपने अन्तर में देख ! तुझे आनन्द से छलकते हुए अमृत सरोवर के दर्शन होंगे। तेरी अनादि की अशान्ति और दुख की आग बुझ जाएगी।'

मुनिराज द्वारा धर्म का पवित्र उपदेश सुनकर, उस बन्दर ने निज आत्म स्वभाव के साक्षात्कारपूर्वक भक्ति से सम्यक्त्व एवं श्रावक के अणुव्रतों को ग्रहण किया। अतीन्द्रिय आनन्दभोजी उस बन्दर ने जीवनपर्यन्त सम्यक्त्व एवं अणुव्रतों की अखण्ड आराधना को बनाये रखा। अन्त में सात दिन के संन्यासमरणपूर्वक इस धर्म के प्रभाव से वह सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। यह धर्म का ही तो प्रभाव था, जिससे एक बन्दर ने देव पर्याय तो प्राप्त की है, साथ ही मोक्षमार्ग भी शुरू कर लिया; इसलिए धर्म अथवा गुरु से बढ़कर संसार में कोई सुख का कारण नहीं है।

अपने को शामिल किये बिना हम किसी दूसरे की बात ही नहीं कर सकते। जैसे - यह मेरा बेटा है – इत्यादि।

– ब्र. रवीन्द्रजी आत्मन्

वीरता का मार्ग

(पाण्डव जले नहीं, डिगे नहीं; बल्कि स्थिर रहे।)

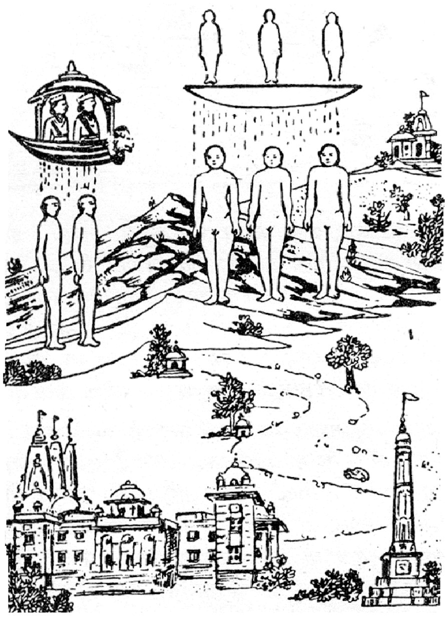

जिस समय पाँच पाण्डव मुनि भगवन्त शत्रुंजय पर्वत पर आत्म ध्यान में एकाग्र थे और दुर्योधन के भानजे ने धधकते लोहे के कड़े पहनाकर उनके ऊपर घोर उपसर्ग किया था। तब उनका शरीर जलने लगा था; परन्तु उस समय भी.....

वे पाण्डव डिगे नहीं, वे तो चैतन्य की परम शान्ति में स्थित रहे। जिस शान्ति के वेदन में कषायरूपी अग्नि का प्रवेश ही नहीं, वहाँ जलना कैसा ? वहाँ तो चैतन्य की परम शीतल, महान शान्ति का सागर उछलता है, उसमें लीन होकर वे स्थिर रहे।

वाह रे वाह !! शान्ति का सरोवर चैतन्य धाम ! जिसकी शान्ति के वेदन में जगत के किसी दुख का प्रवेश नहीं – ऐसी परम शान्ति का पिण्ड मैं हूँ – इसप्रकार जो धर्मी जीव अनुभव करता है, वह जगत में परमसुखी है।

भाई ! यह शान्ति का मार्ग तो बहादुरों का मार्ग है। कायरों का मार्ग नहीं, वीरों का मार्ग है।

▲ हमारे प्रकाशन ▲

चौबीस तीर्थंकर पुराण	(हिन्दी)	75/-
चौबीस तीर्थंकर पुराण	(गुजराती)	50/-
शिवपुर के राही (मल्टीकलर)	(श्री कानजीस्वामी का जीवनदर्शन)	50/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-1	(लघु कहानियाँ)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-2	(सगर चक्रवर्ती, वज्रबाहु, सुकौशल)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-3	(ब्रह्मगुलाल, अंगारक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-4	(श्री हनुमान चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-5	(श्री पद्म (राम) चरित्र)	25/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-6	(अकलंक-निकलंक नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-7	(अनुबद्ध केवली श्री जम्बूस्वामी)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-8	(8 अंग और 5 अणुव्रतों की कथा)	20/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-9	(शासन नायक श्री वर्द्धमान चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-10	(सुभौम चक्रवर्ती, अमरकुमार नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-11	(सती अनंगसरा,निमित्त-उपादान नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-12	(बालि मुनिराज,महारानी चेलना नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-13	(यशोधर मुनिराज, धन्यकुमार कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-14	(नाटक-राजा श्रीकंठ, पुण्यप्रकाश...)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-15	(बंधुश्री एवं लुब्धक सेठ)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-16	(सती मनोरमा एवं पं. टोडरमल नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-17	(प्रद्युम्नकुमार,जयकुमार,सूर्यमित्र कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-18	(सेठ सुदर्शन, दीवान अमरचंद नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-19	(षट् लेश्या, श्री जीवंधर चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-20	(श्री वरांग चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-21	(श्री गुरुदत्त चरित्र,सम्यक्त्वलीला नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-22	(श्री सुकमाल चरित्र, मृगध्वज कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-23	(श्रीकृष्ण, चंदनवाला कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-24	(उपसर्गजयी संजयंतमुनि, राजा श्रेणिक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-25	(कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य कुन्दकुन्ददेव)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-26	(बाईस परीषह : संवाद के रूप में)	30/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-27	(तू किरण नहीं सूर्य है)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-28	(लघु कहानियाँ, एकांकी नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-29	(भरत से भगवान : एक जीवनयात्रा)	20/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-30	(भगवान पार्श्वनाथ चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-31	(भगवान नेमिनाथ चरित्र)	20/-

हमारे प्रेरणा स्रोत : ब्र. हरिलाल अमृतलाल मेहता

जन्म
ई.सन् १९२४
पौष सुदी पूनम
जैतपुर (मोरबी)

देहविलय
८ दिसम्बर, १९८७
पौष वदी ३, सोनगढ़

सत्समागम
ई.सन् १९४३
अषाड़ सुदी दोज
राजकोट

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा
ई.सन् २२.२.१९४७
फागण सुदी १
(उम्र २३ वर्ष)

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के अंतेवासी शिष्य, शूरवीर साधक, सिद्धहस्त, आध्यात्मिक, साहित्यकार **ब्रह्मचारी हरिलाल जैन** की 19 वर्ष में ही उत्कृष्ट लेखन प्रतिभा को देखकर वे सोनगढ़ से निकलने वाले आध्यात्मिक मासिक **आत्मधर्म** (गुजराती व हिन्दी) के सम्पादक बना दिये गये, जिसे उन्होंने 32 वर्ष तक अविरत संभाला। पूज्य स्वामीजी स्वयं अनेक बार उनकी प्रशंसा मुक्त कण्ठ से इस प्रकार करते थे–

''मैं जो भाव कहता हूँ, उसे बराबर ग्रहण करके लिखते हैं, हिन्दुस्तान में दीपक लेकर ढूँढने जावें तो भी ऐसा लिखने वाला नहीं मिलेगा... ।''

आपने अपने जीवन में करीब 150 पुस्तकों का लेखन/सम्पादन किया है। आपने बच्चों के लिए **जैन बालपोथी** के जो दो भाग लिखे हैं, वे लाखों की संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं। अपने समग्र जीवन की अनुपम कृति **चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों का महापुराण**–इसे आपने 80 पुराणों एवं 60 ग्रन्थों का आधार लेकर बनाया है। आपकी रचनाओं में प्रमुखतः आत्म-प्रसिद्धि, भगवती आराधना, आत्म वैभव, नय प्रज्ञापन, वीतराग-विज्ञान (छहढ़ाला प्रवचन, भाग 1 से 6), सम्यग्दर्शन (भाग 1 से 8), अध्यात्म-संदेश, भक्तामर स्तोत्र प्रवचन, अनुभव-प्रकाश प्रवचन, ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव, श्रावकधर्मप्रकाश, मुक्ति का मार्ग, मूल में भूल, अकलंक-निकलंक (नाटक), मंगल तीर्थयात्रा, भगवान ऋषभदेव, भगवान पार्श्वनाथ, भगवान हनुमान, दर्शनकथा, महासती अंजना आदि हैं।

2500वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर किये कार्यों के उपलक्ष्य में, जैन बालपोथी एवं आत्मधर्म सम्पादन इत्यादि कार्यों पर अनके बार आपको स्वर्ण-चन्द्रिकाओं द्वारा सम्मानित किया गया है।

जीवन के अन्तिम समय में आत्म-स्वरूप का घोलन करते हुए समाधि पूर्वक **''मैं ज्ञायक हूँ...मैं ज्ञायक हूँ''** की धुन बोलते हुए इस भव्यात्मा का देह विलय हुआ–यह उनकी अन्तिम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता थी।